अक्टूबर 2014 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

अक्टूबर-2014

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि ग्रणीह्या रुव।

ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ।। — ऋग्वेद 3/10/4

–हे गुरु ब्रह्म ! आप हमें प्राप्त हों। हे वाणी प्रदान करने वाले गुरो! वेद मंत्र समूहों का साक्षात् ज्ञान कराइये। हे समस्त भूतों में निवास क़रने वाले, सबको अपने में बसाने वाले, मेघ के समान हे गुरुदेव ! हमारे वेदज्ञान, ब्रह्मचर्य, आत्मबल और ईश्वरोपासना को भी बढ़ाइये ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : 82 अंक : 3	**अक्टूबर-2014**	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

—: विनय :—

तोसों और न प्रभु कछु जाँचौं ।
इतनो ही जाँचत करुणानिधि तुम ही मैं इक राचौं ।।
खर कूकुर लौं द्वार-द्वार पै, अरथ-लोभ नहिं नाचौं ।
या पारवान-सरिस हियरे पै, नाम तुम्हारोइ खांचौं।।
विस्फुलिंग से जग-दुख तजि तव विरह-अगिन तन ताचौं ।
'हरीचंद' इक-रस तुमसों मिलि, अति अनंद मन माचौं।।

— भक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी

अमृत-बिन्दु :-

तवज्जह व शक्तिपात

— परमपूज्य समर्थ गुरुदेव

तवज्जह व शक्तिपात के अनेकों भेद हैं परन्तु वह सब तीन के ही अन्तर्गत हैं- (1) मन की तवज्जह, (2) बुद्धि की तवज्जह और (3) आत्मा की तवज्जह । मन की तवज्जह में संकल्प शक्ति और विचार शक्ति का एक साथ प्रयोग किया जाता है, बुद्धि की तवज्जह में विचार शक्ति और विवेक शक्ति से काम लिया जाता है और आत्मा की तवज्जह में आत्म शक्ति की दिव्य प्रकाशमयी धारों से दूसरों को आत्मा के स्थान पर पहुँचाया जाता है । मानसिक तवज्जह निहायत ही निचली चीज है, उसके द्वारा खेल-तमाशे और संसारी काम किये जाते हैं, वह मनुष्य को उठाने के वजाय नीचे ढकेलती है, माया के दल दल में और गहरा फँसाती है, देने वाले और लेने वाले दोनों का सत्यानाश करती है आगे खर्च होते एक दिन वह खुद भी समाप्त हो जाती है और अपने प्रयोग करने वाले को भी प्रेत-योनि में ले जाती है । सारी सिद्धियाँ और करामातें इसी मानसिक शाक्ति के द्वारा अमल में लाई जाती हैं, मन की कल्पना शक्ति को प्रबल बना के अपनी अथवा दूसरे की किसी इच्छा को लक्ष्य बना के उस पर लगा देना और जब तक उस इच्छा की पूर्ति न हो जाय, चारों ओर से समेट के उसी पर लगाये रहना, और उसी इच्छानुसार संकल्प से उसी प्रकार की रचना कर लेना 'मानसिक तवज्जह' कहलाती है ।

मानसिक तवज्जह वाला किसी काल में भी वासना रहित नहीं बन पाता, उसकी इच्छायें दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जाती हैं, वह इच्छाओं का गुलाम रहता है, शान्ति का दर्शन उसे स्वप्न में भी नहीं मिल पाता । वह दुनियाँ में और गहरा फँस जाता है राग-द्वेष और हर्ष-शोक उसका पीछा नहीं छोड़ते, त्याग और वैराग्य की झलक भी कभी उसके अन्तःकरण में नहीं आने पाती ।

मानसिक तवज्जह आत्मा के स्थान तक नहीं पहुँचा सकती । ऐसे लोग अधिकतर तो अन्नमय कोश में ही चक्कर काटते रहते हैं और स्थूल कार्यों की पूर्ति के लिए अपनी शक्ति बरवाद करते रहते हैं । यदि कोई हिम्मत बाँध के ऊँचे को उठ गये तो प्राणमय और मनोमय तक ही उनकी पहुँच हो पाती है । अन्नमय कोश में दुःख अधिक होता है और सुख कम होता है, प्राणमय में सुख और दुःख दोनों समान अवस्था में रहते हैं और मनोमय में दुःख बिल्कुल नहीं रहता, उसका पूर्ण रूप से लोप हो जाता हैं, केवल सुख

ही सुख रहता है, यह तीनों कोशों का अन्तर है । इन तीनों कोशों में वासनाओं का ह्रास नहीं होता बल्कि जितना ऊँचा चढ़ते जाओ उतनी ही वह प्रबल होती जाती हैं । अन्नमय से प्राणमय की वासना अति तीव्र होती है जिनमें फँस के वहाँ के प्राणी अपने को व निज स्थान को बिल्कुल भूल बैठते हैं । ऐसे ही भोगते-भोगते कुछ काल में वह पूंजी जो मनुष्य योनि में परिश्रम कर इकट्ठी की थी, समाप्त हो जाती है । फिर वह प्राणी निर्धन बनके स्थूल योनि की विपत्तियों में जा गिरता है और क्लेश उठाता है। इसी प्रकार आवागमन का चक्र काटती हुई उनकी आत्मा अनन्त काल तक घूमती रहती है । जब तक प्रभु के आश्रित नहीं होता, जब तक लौकिक व पारलौकिक वासनाओं को नहीं त्यागता और जब तक अहं की बलि आत्मा की वेदी पर नहीं चढ़ाता तब तक चैन नहीं मिलता, वह शान्ति की निद्रा नहीं ले पाता, इसलिए साधक का कर्त्तव्य है कि वह इतने ही पर सन्तुष्ट न हो बैठे, आगे बढ़ने का उद्योग करता रहे । ऐसे गुरु का दामन पकड़े जो मनोमय कोश से ऊपर ले जा सके और इस दु:ख सागर से पार लगा सके।

दूसरे प्रकार की तवज्जह बुद्धि की होती है, इसमें गुरु शिष्य के अन्दर विवेक की फुरना करता है, उसकी विवेक शक्ति को उभारता है । ज्ञान-दृष्टि को खोलता है ताकि संसार का असली रूप उसे दिखाई देने लगे, वह अपनी असलियत और अपना कर्त्तव्य समझने लगे । मनुष्य के मस्तिष्क में एक स्थान है जहाँ पर यह विवेक शक्ति रहती है, गुरु अपनी निज धार से उसमें ठोकर देता है, उस सुषुप्त शक्ति को जाग्रत अवस्था में लाने का उद्योग करता है, उसे चालू कर देता है । इसके चालू होते ही भ्रम का आवरण धीरे-धीरे कटना शुरु हो जाता है, जिन चीजों से उसका ममत्व था, जिनसे उनका लगाव था, वह उसे छोड़ के परे हटने लगती हैं और वैराग्य का अंकुर उसके अन्दर फूट निकलता है ।

शास्त्र कहता है कि अभ्यास और वैराग्य से ईश्वर प्राप्ति होती है परन्तु इस स्थान पर अभ्यास की जगह-सत्संग ले लेता है । अभ्यास मनोमय कोश तक ही काम देता है, मन के स्थान से परे हो जाने पर अभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती और न खाली अभ्यास से विवेक में स्फूर्ति आती है । विवेक शक्ति के जाग्रत करने के लिए गुरु के सत्संग में बैठना, उसके अमृतमयी वचनों को पपीहा बन के पीते रहना, उस पर मनन करना और समय पर उसी उपदेश के अनुसार अपने को चलाना, यह तीन काम करने के होते हैं । शास्त्रीय भाषा में इन्हीं का नाम 'श्रवण', 'मनन' और 'निदिध्यासन' है ।

समर्थ पुरुषों के वाक्य थोथे नहीं होते, वह वचन कहते समय अपनी निज शक्ति भी अर्पण करते जाते हैं ताकि उनका उपदेश कानों के पर्दों तक ही न रहे बल्कि अन्दर घुस के हृदय में बैठ जाये, ताकि शिष्य ठीक मार्ग पर लग जाय और उसका कल्याण हो जाय, इसका नाम है-'बुद्धि की तवज्जह' । परन्तु यह वही लोग कर सकते हैं जो विज्ञानमय कोश के परे पहुँच चुके हैं, वहाँ का पूर्ण अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, जिन्हें तत्व ज्ञान हो

चुका है मगर यह बहुत ऊँची बात है ।

श्री गुसाईं जी कहते हैं-'बिनु सत्संग विवेक न होई' इसका तात्पर्य यह है कि अभ्यास से सिद्धियाँ व करामातें चाहे मिल जाँय पर विवेक नहीं खुलता, इसके लिए सत्संग लाजिमी है, इसीलिए सन्तों का उपदेश यह है कि अभ्यास और सत्संग जहाँ दोनों साथ-साथ चलते हैं वहाँ ही सफलता मिलती है, न खाली अभ्यास काम देता है न खाली सत्संग ही उठाता है । अभ्यास भी दृढ़ हो, निरन्तर चलने वाला हो और उसी के साथ-साथ रोजाना नहीं तो कभी-कभी सत्संग भी मिलता रहे तो उद्देश्य की पूर्ति शीघ्र ही होती है । इन दोनों में से एक की भी कमी है वहाँ काम अधूरा ही रहता है । ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती और ज्ञान विवेक शक्ति के तीव्र हो जाने पर जिज्ञासु प्राप्त कर पाता है कि जिसका उपाय 'सत्संग' है ।

गुरु एक आदर्श है शिष्य के लिए, उसकी रहनी-सहनी के अनुसार अपने को बना लेना, उसके व्यवहार व सच्चरित्रता के ढ़ाँचे में अपने को ढाल लेना शिष्य का एक मुख्य कर्त्तव्य माना गया है, यह बात बिना गुरु का समीपत्व प्राप्त किये शिष्य में आ नहीं सकती । गुरु की चुम्बकीय शक्ति (MAGNETIC POWER) जब तक सहायता नहीं करती, इस विज्ञानमय कोश के साधक को ऊपर नहीं खींचती, तब तक वह केवल अपने उद्योग से इस मुकाम के पार होने में सफल नहीं हो सकता, इसीलिए वेदान्त ने श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही यहाँ के साधन माने हैं । चूँकि यहाँ पहुँचकर कर्म छूट जाते हैं, प्राणमय और मनोमय की सारी क्रियायें समाप्त हो जाती हैं, इसलिए ही वेदान्त ने कर्म का निषेध किया है । यदि इस स्थान का साधक श्रवण, मनन और निदिध्यासन के साथ शरीर और मन के ठीक रखने के लिए थोड़ा कर्म भी करता रहे तो उसमें कोई बुराई नहीं है, लाभ ही लाभ है, इससे निदिध्यासन (अमल करने)में सहायता मिलती है, इसलिए सन्तमत अभ्यास और सत्संग दोनों को एक साथ लेके चलता है । इन्द्रियाँ और मन ऐसे बलवान हैं कि यदि इनकी बागडोर थोड़ी सी भी ढ़ीली छोड़ दी जाय तो अवसर पाके यह साधक को दबोचे बिना नहीं छोड़ते, इसलिए इन पर काबू रखने के लिए साधक को अन्त तक अपना कर्म व साधना बनाये रखनी चाहिए, वर्ना किसी न किसी समय वह धोखा खा सकता है और मनन करते-करते भी वह गिर सकता है ।

✦✦

सन्त वचन

गृहस्थ यदि अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे, बिना आसक्ति किए अपना कार्य करता रहे तो उसे भगवान मिलते ही हैं। संसार में आसक्ति छोड़कर सारे कर्म करने चाहिए और अपने दायित्व निभाने चाहिए यही मुक्ति का मार्ग है।

सम्पादकीय

मूल्यांकन

ऐसा देखा गया है कि जो वस्तु हमें सरलता से मिल जाती है उसका ठीक से हम मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं । जैसे हमें रास्ते में कुछ रुपये पड़े हुये मिल जाते हैं तो ऐसे ही खर्च हो जाते हैं उसकी कीमत ही नहीं कर पाते हैं । ऐसे ही जिस सत्संग में हम और आप बैठे हैं हम उसका मूल्यांकन ठीक से नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि वह हमें बड़ी सहजता से मिल गया है । इस संदर्भ में एक घटना मुझे याद आ रही है । परम पूज्य पंडितजी महाराज कन्याकुमारी गये हुये थे । वहाँ समुद्र के अन्दर एक टापू पर विवेकानन्द मेमोरियल बना हुआ है । वहाँ पर पानी के मोटर बोट से जाते हैं । वे वहाँ गये हुये थे । वहाँ पर ध्यान मण्डपम् नाम का एक हॉल है साधकों के ध्यान के लिये । पूज्यवर वहाँ गये, हॉल को देखा । बहुत सुन्दर शान्त स्थान था । चार-पाँच लोग साथ थे । उन लोगों से कहा आओ ध्यान कर लें । सब लोग ध्यान में बैठ गये। बड़ा हॉल था । एक आश्चर्य जनक घटना घटी । धीरे-धीरे हॉल भरता गया और यहाँ तक कि पूरा हॉल भर गया । पर ध्यान समाप्त होते ही आश्चर्यजनक तरीके से हाल खाली हो गया । केवल पूज्य पंडितजी महाराज और उनके साथ जो चार पाँच लोग थे वही रह गये । सबको आश्चर्य हुआ कि इतने लोग आये कहाँ से और कहाँ चले गये ? टापू में आने और जाने के लिये मोटर बोट ही एक मात्र साधन था । यह कौन लोग थे ? क्या रहस्य था ? भाइयों ने परम् भागवत जी से इस रहस्य को खोलने को कहा, पूज्य पंडितजी महाराज मुस्कुराये और कहा भाई ऐसे सत्संग के लिये देवता भी तरसते हैं । जहाँ ऐसा सत्संग होता है वहाँ देवता रूप बदल के आ जाते हैं और सत्संग में शामिल हो जाते हैं । इसकी पवित्रता, इसके ऊँचे विचार, यहाँ की पूर्ण शान्ति, यहाँ का आनन्द उस कोटि का है कि अच्छे-अच्छे देवता भी तरसते हैं । एक बार सागर गये थे । सत्संग का स्थान कोई विशेष नहीं था । एक चौराहे के पास एक छोटे से मंदिर में सत्संग का आयोजन हुआ । विचार था आठ-दस घर के लोग हैं मंदिर में समा जायेंगे । लेकिन जब सत्संग शुरु हुआ तो लोग आते चले गये । मंदिर भर गया, हजारों लोग रास्ते में ही बैठ गये । पूर्ण शान्ति छा गई । प्रसाद चढ़ाने का समय आया तो आस पास के हलवाई जाने कितनी मिठाई लेकर आ गये । सबकी एक ही विनती थी कि उनकी मिठाई भी प्रसाद के लिये रखी जाये । यह है हमारा सत्संग। इस सत्संग में सहज में ही वह अवस्था प्राप्त कर लेते हैं जो अच्छे-अच्छे योगियों को भी प्राप्त नहीं हो पाती है । जिन ऊँची-ऊँची समाधियों के बारे में शास्त्रों में पढ़ते हैं, लोगों के मुँह से सुनते हैं वह सहजता से इस सत्संग में बैठने से प्राप्त हो जाती है । इतना ऊँचा यह सत्संग है । परम भागवत एक बहुत सुन्दर शेर कहा करते थे '**यह दरबार शाहाना है यहाँ कोई आने न पावे**'। यह दरबार इतना ऊँचा है कि इसमें हर एक की

प्रवेश वर्जित है । अगर कोई दाखिल हो जाये तो जा नहीं सकता । यहाँ गिनती नहीं देखी जाती गुण देखे जाते हैं । ऊँचे क्लास में गिनती के ही छात्र पहुँच पाते हैं । यह सत्संग एक रिसर्च सेन्टर है । यहाँ साधक बिना मौखिक उपदेश या प्रवचन के बड़ी सरलता से अपने वास्तविक स्वरूप को पा सकता है । आप ऐसे ही यहाँ नहीं आये । नीचे के क्लास पास किये होंगे तभी यहाँ पहुँच पाये होंगे । आपको गुरु महाराज ने बुलाया होगा । अचानक आप यहाँ आ नहीं सकते।

इस विषय को भगवान कृष्ण ने गीता में बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है । अर्जुन भगवान कृष्ण से अपनी शंकावश प्रश्न करता है- हे कृष्ण ! जो योग में श्रद्धा रखने वाला है परन्तु संयमी नहीं है; जिसका मन योग से विचलित हो गया या किसी कारण अपनी साधना पूरी नहीं कर पाता, मृत्यु हो गई या कोई असाध्य रोग के कारण साधना पूरी नहीं कर पाता, योग की सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता वह किस गति को प्राप्त होता है क्या वह भगवत्प्राति के मार्ग में मोहित और आश्रय रहित व्यक्ति संसार और परमार्थ दोनों ओर से नष्ट भ्रष्ट तो नहीं हो जाता ? भगवान श्री कृष्ण अर्जुन की शंका का समाधान करते हुऐ कहते हैं, हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में विनाश होता है और न परलोक में ही विनाश होता है, क्योंकि आत्मोद्धार के लिये किये हुऐ कर्म वाला कोई भी व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं हो सकता । ऐसे व्यक्ति को जो अपनी साधना पूरी नहीं कर पाता गीता ने उसे योग भ्रष्ट पुरुष कहा है । योग पूरा नहीं हो पाया। ऐसा योग भ्रष्ट व्यक्ति पुण्य बालों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त कर बहुत वर्षों तक उनमें निवास कर फिर शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है । यह जन्म संसार में अत्यन्त दुर्लभ है । वहाँ वह व्यक्ति अपने पहले जन्म में छूटी साधना के लिए पुनः पहले से बढ़कर प्रयत्न करता है और इस जन्म में और आगे बढ़ जाता है । परम पूज्य पंडित जी महाराज इसे और सरल शब्दों में समझाया करते थे । आपका कहना था ज्ञान अनन्त है तथा हमारा जीवन भी शाश्वत है इसमें जन्म दिन है तो मृत्यु रात्रि । न जन्म से हमारा जन्म होता है न मृत्यु से हमारी मृत्यु; ये तो हमारे शाश्वत जीवन के दिन और रात्रि हैं । वे बतलाते थे जैसे एक विद्यार्थी रात्रि को नवां पाठ याद कर रहा तो अगले दिन वह नवां पाठ न पढ़ कर दसवां पाठ पढ़ेगा । ज्ञान अनन्त है इसे एक जन्म में नहीं प्राप्त कर सकते । आज जो भी आपकी आध यात्मिक अवस्था है वह इस जन्म की ही नहीं है बल्कि अनेक जन्मों के बाद आपने यह अवस्था प्राप्त की है । इस जन्म में आपको इसे और आगे ले जाना है । एक जन्म में आप पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर बुद्धत्व प्राप्त कर जावेंगे, जीवन का आवागमन छूट जायेगा । भगवान बुद्ध ने भी अपने कई जीवनों का बृतान्त लिखा है किस प्रकार अनेक जन्म बीत जाने के बाद इस जीवन में बुद्धत्व की प्राप्ति हुई है । इस वार्ता से दो सिद्धान्त स्पष्ट हुऐ कि अध्यात्म मार्ग पर चलके पुनः हम मनुष्य योनि प्राप्त करेंगे तथा जो साधना हमने कभी प्रारम्भ की थी उससे आगे साधना करने का अवसर मिलेगा। अतः हम सत्संग में अनायास ही नहीं आ गये हैं यह हमारा विधान था । आप जानते ही है जहाँ भगवान कृष्ण की वंशी बजती थी वहाँ गोपियाँ आ जाती थीं बस आज भी जहाँ हमारे कृष्ण हमारे गुरु महाराज की वंशी बजती है हम सभी आ जाते हैं और महारास का आनन्द प्राप्त कर जाते हैं। गुरु महाराज से प्रार्थना है सभी पर दया करें ।

✦✦

प्रवचन–पराग :–

साधना में सफलता

—परमभागवत परमसंत पं. मिहीलाल जी

सुनने से तृप्ति नहीं होगी

लोग विषयों में फंसना बुरा समझते हैं उनसे पार होना चाहते हैं और चाहते हैं उनसे छुटकारा । परन्तु यह नहीं जानते कि विषय कितने हैं और वह हमें कैसे–कैसे पकड़े हुए हैं । वास्तव में जिन्हें हम विषय नहीं जानते अच्छा कर्म और पूजा जानते हैं ऐसे भी कुछ विषय हैं जिनसे छुट्टी पाना कठिन हो जाता है । अधिकतर हम विषय पाँच जानते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार । परन्तु यह विषय तो स्थूल हैं बुरे भी समझे जाते हैं छूट भी सकते हैं परन्तु इनसे भी भयानक वह विषय हैं जो धार्मिक हैं और हमें भगवान् तक पहुँचने में बाधा डालते हैं । ''क्योंकि विषय एक स्वभाव है जिसके वशीभूत हो हम आगे बढ़ने से रुक जाते हैं । ऐसे विषयों को यदि हम पकड़ने बैठें तो वह हाथ नहीं आवेंगे । यह अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और मन पर छाया की भाँति छाये रहते हैं। इनका पकड़ना और इनसे छूटना साधक का परम कर्तव्य है । सन्तों ने इसी को झीनी माया भी कहा है, कुछ रूप उन विषयों के आपके सामने रखे जाते हैं । परन्तु पूरी तरह से उन्हें फिर भी समझ नहीं सकोगे । साधकों की समझ में अपने आप आ जायेंगे । ऐसे विषय धार्मिक हैं । जैसे गुरु ने कहा भाई अपने में नम्रता लाओ । हमने नम्रता लाना प्रारम्भ कर दिया । सब को पहिले ही से प्रणाम करने लगे । नीचे बैठने लगे, लोगों को ऊँचा आसन देने लगे । दावतों में पत्तल उठाने और बहुत से काम ऐसे करने लगे जिनसे लोग समझें कि यह बड़े नम्र हैं और मैं भी अपने में समझता हूँ कि मुझमें यह बात आ गई । अब तो मैं अहङ्कार से पार हो गया । मैं सब को पहिले से प्रणाम कर लेता हूँ । परन्तु यह एक विषय बन गया और हम उस सूक्ष्म अहंकार में फँसने लगे । अच्छा गाना गाया, लोग पसन्द करने लगे और वाह–वाह की वर्षा होने लगी । व्याख्यान देना या प्रवचन करना यह भी बहुत बुरा विषय है यदि यह किसी को पड़ जाय तो फिर क्या है, सारी व्याधि एक तरफ और यह अकेली बीमारी एक तरफ । इसी प्रकार सुनने का भी एक विषय है । जिसके पीछे यह लग जाता है उसका मन इसमें ऐसा फँस जाता है कि एक इंच भी आगे चलना कठिन हो जाता है । हम सुनने के आदी हो गये हैं, करने के नहीं । सुनते बहुत हैं परन्तु उसके अनुसार, अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न कम करते हैं । रामायण पढ़ने के हम प्रेमी हैं, मास में दो तीन बार पूरा पाठ कर जाते हैं । कोई–कोई तो प्रति दिन पाठ कर लेते हैं । परन्तु फिर भी लाभ कितना ?

यह हमारी अन्तरात्मा जानती है । हाँ, लोग हमें धार्मिक कहते हैं, हम को महात्मा कहते हैं-लाभ यही हो जाता है । परन्तु यह सत्य समझो कि हम अपने स्थान से उसी प्रकार आगे बढ़े जैसे तेली का बैल दिन के बारह घंटे चल कर वहाँ का वहीं रहता है ।

सुनना एक विषय है । किसी को गीत सुनने की आदत है, किसी को कहानी। छोटे-छोटे बालकों को देखो जब तक वह बड़ी दीदी की कहानी नहीं सुन लेते सोते नहीं । यह कहानी उन्हें भाती है उनके मन को आनन्द देती है । बस यही दशा हमारी है । हम धार्मिक कहानी सुनने के आदी हो गये हैं । जहाँ कथा होती है खूब सुनते हैं और अच्छी लगी तो प्रशंसा कर देते हैं और कल के लिये फिर प्रोग्राम सुन कर प्रतीक्षा करते हैं । यह सब कलाकार की तरकीब है कि वह कथा रोचक बना कर श्रोताओं को हँसा दे या कोई करुणा पूर्ण विषय सुना कर उनको रुला दे ।

आज ऐसे कलाकारों की कमी नहीं है । वह लोगों को ऐसे फँसा लेते हैं कि साधकों को आगे बढ़ने से रोक ही देते हैं और साधक भी यह समझ कर कि यह भगवान की कथा है सुनो, और आगे नहीं बढ़ते।

हमें जिस लक्ष पर पहुँचना है उस तरफ चलना चाहिये वहाँ की बातें सुनने से काम नहीं बनेगा । भगवान का स्वरूप बड़े आनन्द का है । उनके दर्शन से सारे कष्ट दूर होते हैं । यह सब सुना, परन्तु फिर दर्शन के लिये चले कितने ? क्या भगवान ने सीता जी के लिये विलाप किया और हम भी थोड़े रो लिये। काम पूरा हो गया ? भरत जी ने भगवान के विलाप में सब कुछ त्याग दिया, उन्हीं का सा जीवन धारण किया । चौदह वर्ष कठिन तप किया-सुन कर दो आँसू बहा देने या भरत सा भक्त..... कह कर चुप हो जाने से क्या हमारा लक्ष पूरा हो गया ? यह हम जितना भी सुनते हैं सब करने के लिये है । भक्त का चरित्र इसलिये सुनते हैं कि हम भी भक्त बनें । हम भी भरत जैसे बन कर भगवान के प्यारे बनें । परन्तु इसके लिये क्या किया? क्या आज से हमने यह प्रतिज्ञा की कि प्रतिदिन भरत की भाँति हम भगवान् की प्रतीक्षा करेंगे? क्या हमने यह निश्चय किया कि यह सब कुछ राम का है हम तो एक सेवक हैं और जीवन भर सेवा करेंगे ? क्या कुछ त्याग की भावना हमारे अन्दर आई ? यदि आई तो हमारा सुनना सार्थक; वरना एक सुनने का विषय । कथा वाले आज वह पण्डित चले गये कल दूसरे महात्मा आ गये । इनकी भी सुनो यह क्या कहते हैं । यदि कुछ रोचक हुई तो ठीक वरना तो वही अच्छे थे । कुछ लोग कीर्तन सुनने के शौकीन हैं, कीर्तन का राग जमा तो अच्छा है, नहीं जमा तो कुछ नहीं । यह सब विषय नहीं तो क्या है। साधक के मार्ग में यह सब बाधाएँ हैं । तुम्हें जहाँ जाना है उस मार्ग को चलो, बीच में गाने, बजाने, किस्सा, कहानी बहुत मिलेंगी कहीं-कहीं पर इससे भी अधिक रोचक और फँसाने वाली चीजें सामने आवेंगी। यदि हम यहीं अटक गये तो निश्चित स्थान अर्थात् उस राज दरबार में महाराजा का दर्शन कैसे कर सकेंगे । देखा गया है कि राज दरबार तक पहुँचने में बड़ी-बड़ी सुहावनी चीजें मिलती हैं । वहाँ की वाटिका- उपवन, सुन्दर-सुन्दर महल, कलाकारों का नृत्य-अभिनय, धार्मिकों के लिये उपदेशक, मन चलों के लिये

सिनेमा, थियेटर, फिर दरबार की अनोखी शान, एक बार देखने से दृष्टि चकित हो जाय । फिर उस महाराज का दर्शन और मिलन तो बहुत पीछे की बात है । जब यहाँ के राजाओं का यह हाल है तो उस विश्वनाथ के दरबार का तो कहना ही क्या है ? यदि मनुष्य न पहुँच सके और उसकी माया में भूल जायें तो क्या आश्चर्य ।

इन सब विषयों से मन को रोको । इच्छा हो तो केवल भगवान के दर्शन की । सुनो, उस पर विचार करो और फिर उस पर चलने को तैयार हो और चल दो । शास्त्रों ने इसीलिये कहा है कि श्रवण-मनन-निदिध्यासन । सुनो अर्थात् वह शब्द सुनो कि फलाँ भक्त ने ईश्वर को प्राप्त किया, विचार करो कैसे किया । क्या मैं नहीं कर सकता? मैं भी करूँगा, और उसके लिये चल दिये अर्थात् वह कार्य प्रारम्भ कर दिया। कोई गंगा की प्रशंसा करता है वह बहुत सुन्दर है, एक बार स्नान से जन्मों के पातक छूट जाते हैं । यह ठीक है परन्तु पातक, सुन कर नहीं धुलेंगे । चलो, गंगा का दर्शन करो और स्नान करो, जल पीओ, तभी शान्ति मिल सकती है । किसी विषय को पालो मत अपने मतलब की एक बात बहुत है । शायद आपने वृन्दावन में लाला बाबू बंगाली का मन्दिर देखा होगा वह बहुत सुन्दर बना हुआ है करोड़ों रुपयों की जायदाद उससे लगाई थी । अपनी सारी सम्पत्ति भगवान् के लिये लगा कर ब्रज में रोटी के टुकड़े माँग कर भगवान की भक्ति में जीवन व्यतीत किया था । उनको एक छोटी सी बात ने ही बदल दिया था । संध्या का समय था कलकत्ते में भागीरथी के किनारे इनका घर था । एक मल्लाह जो अपनी नाव लौटा के दूसरी पार ले जा रहा था, आवाज लगाई–"भाई जो पार जाना चाहो आ जाओ, सन्ध्या हो गई मैं नाव ले जा रहा हूँ!" कहते हैं छत पर लेटे-लेटे इनने उसकी आवाज सुनी और वहीं से कहा ठहरो हम आते हैं । हमें पार कर दो । बस, फिर क्या था पार हो गये और आज तक फिर लौट कर संसार में नहीं आये । मैंने इसीलिये कहा है कि बहुत सुना है, अब कुछ करना भी चाहिये । जीवन थोड़ा रह गया है, पार होने के लिये कोशिश करो । सैकड़ों नावें पार होने को खड़ी हैं, किसी पर सवार हो जाओ और पार हो जाओ । आज एक नाव देखी मल्लाह कमजोर है, जाने पार करेगा कि नहीं, कल दूसरी देखी नाव कमजोर है टूट तो न जायेगी । आगे और देखी इसमें तो बीस आदमी बैठे हैं डूब न जाय । इस प्रकार करते-करते समय जा रहा है और वह काल का भूत पीछे, लगा है जाने कब आकर पकड़ ले । इसीलिये कहा था कि सुनने से तृप्ति न होगी । माया के पर्दे मोटे भी हैं और नीचे अत्यन्त झीने भी, अपनी कोशिश करके ख्यालों का छोड़ना भी उनका पकड़ना ही है । आगे चलकर स्थिति ऐसी आ जाय कि जिसमें अपने विचारों का भी विचार न रहे, कि हमने क्या साधना की, किससे हमने अलग होने को सोचा और क्या-क्या विचार आये आदि आदि। यही त्याग की भावना का भी त्याग है । न अधिक बोलने की आदत डालो न अधिक सुनने की । न त्याग की जिद करो, न ग्रहण की अर्थात् अपने को बिलकुल स्वच्छ और निर्लेप बनालो । मानो सब काम से निवृत्त होकर अलग बैठे हैं । तब समझो कि हमारी साधना ठीक है ।

✦✦

सुधा-सार :-

रुको नहीं, आगे बढ़ो

—प्रेममूर्ति परम संत श्री डा. नरेन्द्र कुमार जी

महात्मा श्री रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों को उनका कर्त्तव्य समझाने के लिए अपने सत्संग में अक्सर एक प्रसंग सुनाते थे । एक बहुत ही गरीब लकड़हारा था, जो जंगल से लकड़ी काटकर लाता, शहर में बेचता तथा उससे अपने परिवार का गुजारा करता । एक दिन उसने अपनी व्यथा एक महात्मा को बतलाई, महात्मा जी ने कहा-''आगे बढ़ो''। दूसरे दिन महात्मा जी के बचन को याद कर जंगल में आगे बढ़ा तो उसने देखा कि लकड़ी अच्छी है और लाकर बेचने पर अच्छा दाम मिला । कुछ दिन के पश्चात और आगे बढ़ा तो उसे चन्दन का वन मिला । उसके उसे और अच्छे दाम मिलने लगे । उसकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हो गया, रहने को अच्छा मकान भी बन गया । वह कुछ दिनों के बाद महात्मा जी के वचन को याद कर और जंगल में आगे बढ़ा तो उसको पहाड़ों के पास सोने की खान का पता लग गया । वह सोना लाता, बाजार में बेचता । उसको एवं उसके परिवार को अब रहने, खाने, नौकर, चाकर सब प्रकार की सुबिधा हो गई जीवन में सब प्रकार का आराम भी मिलने लगा । कुछ दिन के पश्चात् और आगे बढ़ा तो उसे एक गुफा में हीरे जवाहरात का ढेर लगा हुआ मिला और वह लकड़हारा एक बहुत बड़ा रईस हो गया । तो महात्मा रामकृष्ण कहते थे कि साधक को भी चाहिए कि कहीं रुके नहीं जब तक कि उसको अन्तिम पद न मिल जाय ।

हमारे शास्त्र बताते हैं कि अध्यात्म मार्ग में जब साधक चलता है तो उसे पाँच कोश पार करने पड़ते हैं । वह कोश हैं- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश । अन्नमय कोश तो उसी दिन पार हो जाता है जिस दिन साधक परमात्मा की ओर चलने का विचार बना लेता है । प्राणमय कोश पार करने के लिए साधना करनी पड़ती है । जिसमें मुख्य कर्त्ता हमारी इन्द्रियाँ होती हैं और मन सहायता देता है । जब यह इन्द्रियाँ संयम में आ जाती हैं तो मन भी थोड़ा शान्त होने लगता है उस दिन प्राणमय कोश पार कर साधक मनोमय कोश में आ जाता है । इस कोश में मुख्य कर्त्ता मन होता है बुद्धि सहायता देती है । अगर साधक निराकार ब्रह्म की उपासना करता है तो उसे उपासना ही कहते हैं मगर साकार ब्रह्म की उपासना को भक्ति कहते हैं । जैसा नाम है उपासना यानी भक्त और भगवान आमने-सामने रहते हैं । इस क्रिया से धीरे-धीरे मन स्थिर और शान्त होने के साथ-साथ मन की निर्मलता भी प्राप्त होते ही उपासना योग हो जाता है और साधक विज्ञानमय कोश में चला जाता है ।

विज्ञानमय कोश में कोई साधना नहीं करनी पड़ती जब मन शान्त हो जाता है तो बुद्धि अपने आप परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने लगती है और इसको ज्ञान योग कहते हैं । परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते-करते बुद्धि निर्मल बन शान्त हो जाती है उस दिन विज्ञानमय कोश पार कर आनन्दमय कोश में चला जाता है । आनन्दमय कोश में प्रेम के अलावा कुछ नहीं है लेकिन इसको पार करने के लिए एक ही साधन है वह है "समर्पण"। अपना सब कुछ गुरु या इष्ट के चरणों में समर्पित कर दो ।

कुछ लोगों का कहना है कि रहने के लिए दो ही कोश अच्छे हैं अन्नमय कोश-खाओ पीयो और मस्त रहो या आनन्दमय कोश-प्रेम की मस्ती में मस्त रहो । बीच में जो कुछ भी है यह तो रास्ते के स्टेशन हैं । सच बात यही है कि जैसे हम यहाँ से देहली तक जायें तो रास्ते में तरह तरह के दृश्य दिखलाई देंगे । ऐसे ही प्राणमय, विज्ञानमय कोशों में दृश्य दिखलाई देते हैं । वास्तव में दृश्य इतने आकर्षक होते हैं खासतौर से मनोमय कोश में कि साधक वहीं अटक जाता है और अपने को कर्त्ता मान लेता है ।

शुरु से गुरुमहाराज हमको यही शिक्षा देते हैं कि तुम तो दृष्टा हो, कर्त्ता तो मैं हूँ । अतः जो कुछ होता है या दिखता है तो उसको दृष्टा की तरह देखना चाहिए और श्री गुरु महाराज जी को कर्त्ता मानना चाहिए तभी हम रुकावटों से बच सकते हैं जैसे वह लकड़हारा बीच-बीच में याद करता रहता था कि गुरुमहाराज जी ने (महात्मा जी) उसको कहा था वैसे ही हमको भी अपनी उन्नति की ओर नजर रखनी चाहिए ।

गुरु महाराज, पूज्य पंडित जी, पूज्य जिया जी और पूज्य बड़े भैया जी ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने अपने को कभी कर्त्ता नहीं समझा । गुरु महाराज जी हमेशा कहते थे कि यह सत्संग तो दादा गुरु या उनके गुरुमहाराज जी का है वे ही सत्संग कराते हैं । मैं तो केवल दृष्टा की तरह बैठा रहता हूँ । हमको भी यही चाहिए कि यह दृष्टा भाव हम अपने में लाते रहें क्योंकि इस मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट यही है कि हमको अपने अध्यात्म ज्ञान का अहंकार आ जाता है । अगर अध्यात्म ज्ञान का अंहकार हो गया और उसे हम गुरु के चरणों में नहीं चढ़ा पाये तो रुकावट ही रुकावट है । इसीलिए गुरु महाराज जी ने यह परम्परा बनायी थी कि रोज साधना के बाद अपनी जो साधना का फल है उसको अपने गुरु के चरणों में अर्पित कर दें ।

✦✦

रामाश्रम सत्संग

यह प्यासों का प्रेमाश्रय है यहां संभलकर आना जी
जो भी आए यहाँ, गुरु का हो जाये दीवाना जी
ऐसा बरसे रंग यहाँ पर जनम-जनम तक मन भीगे
ऐसी बरखा होए यहाँ पर बचे न कोई दीवाना

आश्रय-भाव और निर्भयता

—संत श्री ओम प्रकाश 'विरल' जी

व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक जगत में निर्भयता शब्द का प्रचलन आजकल बहुत हो चला है किन्तु सन्तों की दुनियाँ में निर्भयता शब्द एक अलग ही अर्थ रखता है, तथा वह एक ऐसी स्थिति का द्योतक बताया जाता है जब कि भक्त भगवान या गुरु पर पूर्ण रुप से आश्रित हो जाता है । श्री गुरु महाराज के शब्दों में—'भरोसे वाले पर हर समय शान्ति, मस्ती और बेफिक्री छाई रहती है और वह किसी अज्ञात-शक्ति के सहारे प्रसन्न और निश्चिन्त रहता है । निर्भयता और आत्म-सम्मान उसके रोम-रोम से टपकने लगते हैं ।

जैसे बालक माता-पिता के भरोसे निश्चिन्त रहता है । जो जितना अधिक निर्भय होगा, समझो वह उतना ही आश्रित और समर्पित होगा । जिसके आश्रय भाव में जितनी कमी होगी उतनी ही वह अन्तर की निर्भीकता में कमी अनुभव करेगा, भले ही ऊपर से वह निर्भीक होने का नाटक रचे । निर्भय मनुष्य विनय की मूर्ति होता है, असत्य से वह सहयोग नहीं करता परन्तु विनय को भी कभी नहीं छोड़ता । महात्मा गाँधी ने लिखा है- दुनियाँ के विरुद्ध खड़े रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिए औद्धत्य व तुच्छता अपने में लाने की आवश्यकता नहीं । जीसस दुनियाँ के विरोध में खड़े रहे, बुद्ध भी अपने युग के विरोध में रहे, प्रहलाद ने भी वैसा ही किया परन्तु वे सब विनय की मूर्तियाँ थीं ।

महापुरुषों ने कहा है कि जो जितना अधिक शक्तिशाली होगा वह उतना ही अधिक विनयी भी होगा । निर्भय तो संसार में कोई भी नहीं-केवल काल है जो निडर होकर घूमता है और प्रत्येक को अपना ग्रास बना लेता है । जो काल की तरह अपने को निर्भय समझता है, उस पर काल अट्टहास करता है । सन्तों की दुनियाँ में केवल भरोसा ही भरोसा है, आश्रय ही आश्रय है, सहारा ही सहारा है । कोई समझे या न समझे, यहाँ स्वच्छन्द तो एक रज का कण भी नहीं है । वह भी दूसरे कणों से दबा हुआ है । ऐसे ही संसार में प्रवेश करते ही मनुष्य का जीवन किसी के सहारे चलता है । बालपन में माता-पिता का आश्रय, बुढ़ापे में लकड़ी का सहारा सबने देखा ही है । परन्तु सन्त बराबर यह समझाते चले आए हैं कि जवानी में और भी अधिक सहारे की जरूरत होती है । इसी अवस्था में तो उसे गुरु अथवा भगवान के सहारे की आवश्यकता होती है, कारण कि चढ़ती आयु में आदमी ठीक देख नहीं पाता,

ठीक चल नहीं पाता और ठोकर खाकर फिर सम्हल नहीं पाता । गुरु एक प्रकाश देते हैं, उस प्रकाश के सहारे उसे चलने का मार्ग दिखाई देता है । गुरु साधक को खाई-खन्दक से बचाता है, मन की उत्ताल तरंगों पर अंकुश लगाता है, गन्दे नाले की ओर बहते हुए जीवन-प्रवाह को मोड़कर गंगा की ओर ले जाता है । उसे वासनाओं की उमस और भोग की तपन से बचाता है, ज्ञान और भक्ति की शीतलता प्रदान करता है । इसलिए गुरु का सहारा चाहिए । यह सहारा साधक को निर्भय बनाता है । जिसने किसी वृक्ष की छाँह नहीं ग्रहण की, वह तो तपता ही रहेगा, जिसने किसी नाव पर पैर नहीं रखा वह इस पार खड़ा रह ही जायेगा ।

भगवान या गुरु के आश्रित होना कोई खेल नहीं है । जब तक मिट्टी खुदबुदाना बन्द नहीं कर देती, कुम्हार के काम की नहीं बनती । वह उससे अपनी इच्छा की मूर्त्ति नहीं बना सकता । साधक में आश्रय भाव जाग्रत करने के लिए गुरु को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, उसे अनेक युक्तियाँ काम में लानी होती हैं, आगे फिर उस आश्रय भाव को परिपक्व बनाने के लिए गुरु को एक विचित्र रचना रचनी पड़ती है, जो वहाँ का आश्रय लिए रहता है, मौन होकर उसके आश्रय को समझ प्रसन्न रहता है, उसी के लिए दया का द्वार खुलता है । कबीर साहब के जीवन की एक घटना है—

कबीर साहब के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर पण्डित और मौलवी दोनों ही ईर्ष्या करने लगे । उन्होंने मन में सोचा कि यह तो हमारा धन्धा ही चौपट कर देगा, अत: इसको बदनाम करना चाहिए । मनुष्य की नियत जब खराब हो जाती है तब वह कुछ भी कर सकता है । प्रतिशोध की धधकती ज्वाला सारा विवेक नष्ट कर देती है-व्यवहार की सीमा भी तोड़ डालती है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सब एक हो गये और एक वेश्या के पास पहुँचे । उसे तो धन की लिप्सा थी । बहुत-सा धन लेकर उनका यह प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया कि मैं इन्हें चरित्रहीनता का कलंक लगाकर बदनाम करूँगी । उसने सरे बाजार में अनर्गल शब्द कहे, जिससे लोग कबीर की साधुता पर संदेह कर ढोंगी समझने लगे । उनके पास अब कोई नहीं जाता और सब एक शंका की दृष्टि से उन्हें देखते । श्री कबीर अन्तर में अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे कि-भगवान ने मुझे एकान्त सेवन तथा निष्काम भजन का अवसर देकर बड़ी कृपा की है । वह कुछ नहीं बोले और न उसके कहने का प्रतिकार किया । परन्तु धीरे-धीरे जब वह वेश्या उनके थोड़े से सम्पर्क से ही शान्ति में आई तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई । उसका मन उसे धिक्कारने लगा और एक दिन प्रायश्चित की ज्वाला में जलती हुई कबीर साहब के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगी । कबीर उसी तरह प्रसन्न और शान्त चित्त से बोले- इसमें क्षमा करने की क्या बात है माता, तुमने तो मेरा उपकार ही किया है । मुझे अनेक लोगों से मिलने-जुलने में भजन का समय ही नहीं मिल पाता था, एक दूरी, सेवा और उपकार की

गुरु के चरणों से मुझे अलग किये हुई थी, उसे हे महामाया, तुमने दूर कर दिया। मैं तुम्हारा बड़ा कृतज्ञ हूँ । वेश्या पवित्र हो चुकी थी । कबीर आश्रय-भाव में भींग रहे थे । उनके नेत्रों के आँसू इसकी साक्षी दे रहे थे ।

कबीर की यह गाथा बतलाती है कि उनका आश्रय-भाव कितना मजबूत था, कितना भरोसा था उन चरणों का जिसने जीवन को कुछ का कुछ कर दिया था । इस वास्ते बड़ी जरूरत है इस बात की कि हम गुरु को समझें, उनके मिशन को समझें, परन्तु यह तब तक नहीं हो सकता जब तक हम अपने जीवन के लक्ष्य को न समझेंगे । श्री गुरु महाराज के शब्दों में-

'अनुभवी ज्ञान होने पर ही भक्त निर्भय हो पाता है, अपने को उन पर छोड़ पाता है । यह ऐसा भरोसा ही पार होने की कुन्जी है, उसके लोक में पहुँचने की सीढ़ी है ।'

हमें इन शब्दों पर बार-बार विचार करना होगा और आश्रय-भाव का सहारा लिए विनयी होकर निर्भयता का पाठ पढ़ना होगा । परमात्मा हम सब पर दया करें ।

✦✦

युगपुरुष परमसंत श्री हेमेन्द्र कुमार जी के दो संदेश

(1) श्री गुरु महाराज कहा करते थे कि किसी की भी अवस्था का अन्दाज इसी से हो सकता है कि उसमें सहनशीलता कितनी है? जो जितना ही ज्यादा ऊँची अवस्था में होगा उसकी सहनशीलता की स्थिति भी उतनी ही ऊँची होगी । सच्ची सहनशीलता के उच्च स्वरूप में सहनशील व्यक्ति के हृदय में कड़े शब्द कहने वाले या अपमान करने वाले के प्रति सद्भावना और प्रेम पलना चाहिए । ईर्ष्या या द्वेष या बदले की भावना कदापि नहीं । अहंकारी को सहनशील बनने में कठिनाई होती है । अहंकारी वृत्ति बड़ी बाधक बन जाती है अध्यात्म के रास्ते में । अहंकार कई प्रकार का होता है और कई प्रकार से आकर वह गिराने का प्रयत्न करता है । गुरु अपने समर्पित शिष्य की इस अहंकार रूपी सर्प से रक्षा करता है ।

(2) आज समाज और संसार को चरित्रबल से सम्पन्न नेतृत्व की आवश्यकता है जो मानवीय सुन्दर व्यवहार, निर्मल चरित्रबल व दैवी सम्पदा के साथ सन्तों के लक्षणों से विभूषित अंतःकरण वाला हो । इस सत्संग की सरल साधना से आप ऐसे बन सकते हैं । विश्व व्यापिनी गुरु शक्ति की परीक्षाओं में आप सफल हो गये तो गुरुदेव के मिशन की जिम्मेदारी भी आपको निभानी है । आओ इस मंगल विहान के प्रकाश में कल्याणमार्ग आप की प्रतीक्षा कर रहा है- सफलता आपके जीवन को सफल बनाने के लिए आह्वान कर रही है । आप पक्के इरादे व सच्ची लगन से जुट पड़ें इस काम में-पूज्य गुरुदेव आप सब पर कृपा करें ।

✦✦

पानी केरा बुदबुदा

—श्रीयुत् प्रभुदयाल शर्मा

परम संत कबीर साहब की वाणी मानव मात्र को जीवन की क्षणभंगुरता की ओर संकेत कर रही है और मनुष्य को कर्त्तव्य की ओर सचेत कर रही है–

'पानी केरा बुद बुदा अस मानुस की जात ।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात ।।'

मानव जीवन पानी के उन बुल बुलों के सदृश है, क्षणभंगुर है जो देखते-देखते ही अदृश्य हो जाते हैं, एक लहर आई बहुत से बुल बुले दिखने लगे, दूसरी के आते ही अदृश्य हो गये और नये दिखने लगे । प्रातःकाल होते-होते वे तारागण कहाँ अदृश्य हो जाते हैं ? यही दशा है इस अमूल्य जीवन की जो परमात्मा की असीम अनुकम्पा से ही इस जीव को प्राप्त होता है- 'कबहुँक करि करुना नर देही, देत ईस बिनु हेतु सनेही ।।' ऐसे इस अमूल्य एवं साथ ही क्षणभंगुर जीवन में मानव मात्र का क्या कर्त्तव्य है, कैसे इस जीवन को जियें ? यही यक्ष प्रश्न ही हम सब मनुष्य मात्र के समक्ष है । महर्षि व्यास जी महाराज कर्त्तव्य का बोध कराते हुये कहते हैं–

'लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थ दमनित्यपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
त्रिःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात ।।'

यद्यपि यह मनुष्य शरीर है तो अनित्य ही-मृत्यु सदा इसके पीछे लगी रहती है, परन्तु इससे पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है, इसलिये अनेक जन्मों के बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि शीघ्र से शीघ्र, मृत्यु के पहले ही मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न कर ले, इस जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है । विषय भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं इसलिये उनके संग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिये ।

क्या करें: इसके लिये पुरुषार्थ मनुष्य के जीवन में क्या है ? क्या उसे करना चाहिये और कैसे वह इस प्रयत्न में सफल होगा ? इन सब प्रश्नों का समाधान इस महर्षिवाणी में देखें-

'तस्माद् गुरुं प्रपद्यते जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।।'

श्रीमद्भागवत 3/21

जिज्ञासु को चाहिये कि गुरु को ही अपना प्रियतम आत्मा और इष्ट देव माने, उनकी निष्कपट भाव से सेवा करे और उनके पास रहकर भागवत धर्म-भगवान् को प्राप्त कराने वाले भक्तिभाव के साधनों की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे । इन्हीं साधनों से अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता रहे। परम भागवत पण्डितजी महाराज से भी किसी जिज्ञासु भाई ने यही प्रश्न

किया कि जीवन में मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या है ? उनका बड़ा ही संक्षिप्त और सटीक उत्तर था- 'किसी संत की प्राप्ति', पुनः प्रश्न करते हैं वे जिज्ञासु– क्या इससे भी बड़ा पुरुषार्थ और कुछ है ? परम भागवत का बड़ा ही मार्मिक एवं सहज उत्तर था- 'अपने को सौंप देना' । ऐसा परमात्मा की कृपा से जीवन में बन पड़े तो फिर मंगलद्वार ही खुल जायेगा, उसी मंगलद्वार के लिये शिष्य को अपना सब कुछ गुरु के चरणों में न्योछावर करना होगा, वे महापुरुष ऐसे जिज्ञासु को प्रेरित करते हुये लिखते हैं- 'जो संत तेरे अज्ञान का पर्दा हटा विश्व के कण-कण में उस आदि शक्ति का दर्शन कराते हैं, तेरी मुक्ति का मंगल द्वार खोलते हैं और यह सब अहेतुकी कृपा वश । अन्धेर है कि उनके पास जाने के लिये तू समय और धन का अभाव बतलाता है, रे मूर्ख !सत्संग में तुझे निर्मल दृष्टि प्राप्त होगी, जीवन भी उसकी कीमत नहीं है, फिर तू धन और समय की बात करता है, लगा दे दाँब पर अपना सर्वस्व, प्राप्त कर ले उन चरणों का आशीर्वाद । बहार के ये दिन कहीं यों ही न बीत जायें ।' यह सब उन्होंने कहा अथवा लिखा ही नहीं वरन् अपना सर्वस्व दाँव पर लगा ही दिया, न समय देखा और न धन का अभाव ही देखा, देखा तो मात्र समर्थ गुरुदेव के संकेतों को और उनके रुख को । एक दिन ऐसे ही वह समय आ पहुँचा । प. पू. श्री गुरु महाराज बड़ी ही भावपूर्णमुद्रा में परम पूज्य पण्डित जी महाराज से कहने लगे-'पण्डित जी जीवन में यदि आगे बढ़ना चाहते हो तो नौकरी छोड़ दो'। उस समय तो पण्डित जी महाराज कुछ कह न पाये परन्तु गुरु महाराज के मुखारविन्द से निःसृत वे शब्द उनके अन्तर में अंकित हो गये । बार-बार वे शब्द उनके अंतर में कोंधते रहे? आखिरकार वह समय आ ही गया और उन्होंने त्याग पत्र दे दिया, सब समझाते रह गये । गुरु महाराज के समक्ष पहुँचे, देखते ही वह अन्तर्यामी कहने लगे पण्डित जी! नौकरी छोड़ दी क्या ? संक्षिप्त सा उत्तर था- 'हाँ महाराज' परम समर्थ गुरुदेव की उस एक निगाह ने ही उनको मालामाल कर दिया, न धन का अभाव ही रहा और न समय का ही, जीवन लाभ प्राप्त कर गये, कृतार्थ हो गये।

परम ज्ञानी शुकदेव जी महाराज से महाराजा परीक्षित प्रश्न करते हैं-भगवन् जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, जिसकी मृत्यु सन्निकट है, उसको अपनी मुक्ति का क्या उपाय करना चाहिये ? वे परम समर्थ शुकदेव जी महाराज अपने शिष्य परीक्षित को वह ज्ञान प्राप्त कराते हुये कहते हैं-

'एतावान् सांख्य योगभ्यां स्वधर्म परिनिष्ठया ।
जन्मलाभः परः पुंषामन्ते नारायण स्मृतिः ।।'

हे परीक्षित! मनुष्य जन्म का इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो- ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय उस परमात्मा की ही स्मृति बनी रहे, भगवान् कृष्ण की वाणी भी यही संकेत दे रही है-जो पुरुष अन्तकाल में मुझ को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है- इसमें कुछ भी संशय नहीं है । राजर्षि खट्बांग अपनी आयु की समाप्ति का समय जानकर दो घड़ी में ही सब कुछ त्याग कर भगवान् के उस अभय पद को प्राप्त कर गये, ऐसा ही कुछ बानक उस समय भी बन गया जब भगवान् कृष्ण पाण्डवों सहित शरशैया पर स्थित भीष्मपितामह के समक्ष थे । भीष्मपितामह उस दैवी एवं अद्भुत अवसर को देख बड़ी ही आर्तवाणी में कहने लगे-अर्जुन!

तुम बड़े भाग्यशाली हो, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा कृष्ण का तुम्हें युद्ध में सहयोग मिल रहा है । इन्हें तुमने अपना दूत बनाया एवं सारथी तक बना डाला है । यह कहते-कहते भीष्म पितामह की आँखें गीली हो उठीं । फिर कहने लगे-केशव ! तुम भक्तों से बहुत प्रतीक्षा कराते हो, यह तो मेरा सौभाग्य ही है कि असंख्य बार तुम्हारे दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा, भक्त तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं, आज तुम्हें भी प्रतीक्षा करनी होगी, जब तक मेरा शरीर छूटेगा तब तक प्रतीक्षा में खड़े रहना होगा लेकिन यह ध्यान रहे कि प्रतीक्षा में खड़े-खड़े तुम्हारा मुख कमल खिला रहे, मुख पर उदासीनता न आने पावे । श्रीकृष्ण भक्त की प्रेम और भक्ति से सराबोर वाणी सुनकर मुस्कुरा दिये और उधर भीष्म पितामाह ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया । बस ज्योति में ज्योति विलीन हो गई । भक्त भगवान् में लय हो गया, जीवन लाभ-प्राप्त हो गया ।

वास्तविकता तो यह है कि जो जितने समय के लिये यहाँ इस संसार में आया है वह उतने ही क्षण यहाँ टिक पायेगा, इसके आगे एक पल भी नहीं फिर चाहे कोई सारी दुनियाँ का धन वैभव सब एक साथ दाँब पर लगा दे, पर एक पल भी यहाँ रुका नहीं जा सकता और यहाँ अधिक रुके रहने की चेष्टा की जरूरत भी नहीं है । अपना कार्य शीघ्रातिशीघ्र निपटाना है तभी यह जीवन यात्रा पूरी हो सकेगी । परम संत डा. बृजेन्द्र कुमार जी महाराज लिखते हैं- 'अन्त समय वृत्ति सही रखने के लिये बहुत पहले से प्रयत्न करना पड़ता है । जो भाग्यशाली हर श्वाँस में गुरु की याद के अभ्यस्त हो जाते हैं वही सद्‌गति पाते हैं, इसलिये निरंतर गुरु चिन्तन के अभ्यास में लग जाओ । तुम्हारा अभ्यास और गुरु की दया ही अन्त समय काम आयेगी ।'

हे परम गुरो अब तो भक्त धरमदास की वाणी में यही कर बद्ध प्रार्थना है कि-'धरमदास की अरज गुसाईं अब की खेप निभाय दीजो जी ।'

✦✦

ॐ

पथ-प्रकाशक पत्र

नमस्कार,

चुल्हावली
17-1-46

आप का पत्र मिला । ऋषि व महात्माओं के वचन अक्षरशः सत्य होते हैं । लिखा है-

जो जाकी शरणै बसै ताकी ताको लाज ।
जल समूही मछली चलै बहे जात गजराज ।।

जब मनुष्य हर तरह उनकी शरण ले लेता है पूरा उसी का आश्रय ग्रहण कर लेता है तो उसकी तमाम जिम्मेदारी भी भगवान के ऊपर आ जाती है । कहीं-कहीं पर तो भक्त का स्वरूप बनाकर ही उसकी ड्यूटी पूरी की । कहीं पर उसके नौकर, सहायक या रक्षक बनकर उसके काम को पूरा किया । बस अपनी ही कमी है । जितनी हमारी श्रद्धा है उससे हजार गुना उनकी दया मिलती है।

हस्ताक्षर-मिहीलाल

प्रभु जी दया करो, दया करो

—श्री कृष्ण पाल सिंह

मैं अनाथ, असहाय, अकिंचन, अरु कलुषितमन वारो ।
दीन हीन बल छीन दया निधि, हौं दुरमति ही वारो ।।
पातक हों मैं जनम-जनम को, अनघ अधम मन वारो ।
पर जैसो हों त्रैसो ही गुरुवर, हों मैं दास तिहारो ।। प्रभु जी......

राह देखतो रहों सदा ही निशदिन सांझ सकारो ।
घोर नरक में जीवन बीते, पाये हैं कष्ट अपारो ।।
कहा करों कित जाऊँ दयानिधि चहुँ ओर अंधियारो ।
मैं मूरख मति मन्द अंध को, अब नहीं आप बिसारो ।। प्रभु जी......

फस्यो रहो जंजाल-जाल में, तुमको नाहिं पुकारो ।
जनम-मरण में युगों बीति गये, मिल्यो न मोक्ष को द्वारो।।
आजागमन मिटो नहिं गुरुवर, तन-मन-हिय सब हारो।
जेऊ जनम अकारथ जाय रहो, कछु मेरीहु ओर निहारो ।। प्रभु जी......

काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ ने, जीवन सबही बिगारो।
एक नहीं इन षट विकार से, ग्रसित हृदय ये हमारो।।
विषय, विकार भरे जो मेरे मन, इनको आप निकारो।
केवल तुमहीं समरथ हो प्रभु, कछु नहिं जोर हमारो।। प्रभु जी......

और नहि कोई दाता जग में, तुमरो ही नाथ सहारो।
अखिल जगत में बिना आपके, कोई नहिं है हमारो ।।
शरण में आयो गुरुवर तुमरी, कछुक करो निस्तारो।
आप दया के सागर हो गुरु, कछुतो दया बिचारो।। प्रभु जी......

भव सागर अति अगम असीमित, है अगाध जल वारो।
साधन कछु नहिं मेरे पास में, दीखे नाहिं किनारो।।
बहे जा रहो हों मै गुरुवर, हों अब डूबन वारो।
गहि लेहु मेरी बाँह दया निधि, अरु भव सागर से तारो।। ।। प्रभु जी......

जीवन में संयम

—प्रोफेसर डा. माधुरी नाथ

मानव-मन अत्यन्त चंचल होता है। चंचलता ही मन का सबसे बड़ा दोष है। उसे स्थिर और एकाग्र करना ही सबसे बड़ी साधना है। मन कैसे स्थिर हो ? उसकी चंचलता कैसे दूर हो? इसका एक मात्र उपाय है अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना ।

हमारी इन्द्रियाँ, हमें अनवरत इच्छाओं की पूर्ति के लिए हमारे मन को उकसाती रहती हैं। एक इच्छा पूरी होती नहीं कि दूसरी इच्छा उठ खड़ी होती है। इच्छाओं की कभी पूर्ति नहीं होती। एक न एक मन में उठती ही रहती है। हमारी चेष्टा यही होनी चाहिए कि हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति में न लगे रहें बल्कि उन्हें नियन्त्रण में रखें, उन पर अंकुश लगा कर उन्हें मिटाने की चेष्टा करें।

इस बात को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा करें– जरा। हमारी जिह्वा सबसे सशक्त इन्द्रिय है । वह खाद्य पदार्थों का स्वादभी लेती है और बोलती भी है, दो प्रमुख कार्य उसके द्वारा सम्पादित होते हैं।

जिह्वा को नियन्त्रण में रखने की चेष्टा बहुत बड़ी साधना है। यदि जिह्वा वश में हो तो बहुत सारे अनर्थ होने से बच जाएं।

जिह्वा के वश में यदि मनुष्य हो जाता है तो फिर उसकी मनुष्यता नष्ट हो जाती है। स्वाद के लिए जिह्वा हमेशा लपलपाती रहेगी, खाद्य और अखाद्य का विवेचन वह नहीं करती और न ही पाच्य-सुपाच्य का। जो रसना को तृप्त करे उसी की लालसा उसमें जागती है और वही उसके लिए ग्रहणीय होती है । इसीलिए जो जिह्वा के दुराग्रह के वशीभूत हो जाते हैं वे इसी चिन्ता में रहते हैं कि क्या खायें, क्या न खायें ? कितना खायें और कैसे खाएँ? खा-खा कर उन्हें कभी तृप्ति नहीं होती इसलिए जिह्वा को अपने संयम में रखना आवश्यक है।

जिह्वा का प्रमुख दूसरा कार्य है 'बोलना'। अपनी बोली पर नियंत्रण रखना भी परम आवश्यक है। बोल कर ही हम अपने विचारों-भावों को प्रकट करते हैं। अपनी इच्छा-अनिच्छा, क्रोध-घृणा या आदर-सम्मान की भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम भी हमारी वाणी है। क्रोधावस्था में हम कटु से कटु वाणी बोलते हैं, गालियाँ बकते हैं यानी आग लगाते हैं और विष उगलते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि स्थिति विकट से विकटतर हो जाती है और परिणाम होता है भयंकर। इसलिए हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि हम अपनी जिह्वा को नियंत्रण में रखें, अपने क्रोध पर संयम रख कर वाणी पर

अंकुश रखें। कठिन तो होता है क्रोध की स्थिति में जिह्वा पर नियंत्रण रखना। पर चेष्टा तो करनी ही चाहिए कि हमारी बोली हद से न गुजर जाए। चेष्टा से, अनवरत चेष्टा से वाणी पर मनुष्य अंकुश लगा सकता है। असम्भव नहीं है संयम का ऐसा अभ्यास करना। क्रमशः वाणी को वश में करने की क्षमता मनुष्य में आ जाती है और संयमित वाणी से किसी भयंकर परिणाम का डर नहीं रह जाता ।

जैसा कि हम सभी जानते हैं मन बड़ा चंचल है वह निरन्तर कुछ न कुछ जानने, सुनने, देखने या करने को उत्सुक रहता है। नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ मन में उठती रहती हैं। मन की चंचलता हर घड़ी कुछ न कुछ जानने-सुनने या कहने-करने के लिए मनुष्य को कुरेदती रहती है। हमें आदत डालनी पड़ेगी कि हम अपनी जिज्ञासाओं को नियंत्रण में रखें। वे हमारे मन को क्षुब्ध और लुब्ध न करें। साथ ही मन की उत्सुकताओं को भी हम दबाना सीखें। प्रायः कौन कहाँ जा रहा है, क्या कर रहा है या किसे क्या करना चाहिए, न करना चाहिए जैसे प्रश्नों में हम उलझ जाते हैं । ये प्रश्न हमारे लिए आवश्यक नहीं अतः इनसे अपने आपको अलग रखने का अभ्यास बनाना जरूरी है। ऐसी बातों से खास कर बुजुर्गों को कोई ताल्लुक नहीं रखना चाहिए। अनावश्यक प्रश्न, या हस्तक्षेप, रोक-टोक या पाबन्दी लोगों को पसन्द नहीं आता । लोग कुढ़ते हैं, झींकते हैं और टीका टिप्पणी करते हैं जिससे घर का वातावरण अस्वस्थ हो उठता है। इसलिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि न तो हम अनावश्यक प्रश्न करें, न किसी को आदेश-निर्देश दें। अपना काम जितना हो सके, स्वयं करें। किसी को कुछ करने के लिए कहना अनुचित है। इस संदर्भ में यह बात मन में आ सकती है कि घर-गृहस्थी में रह कर इतना विरक्त होना या उदासीन रहना क्या उचित है? सर्वथा विरक्त और उदासीन रहना उचित नहीं पर अत्यधिक अनुरक्ति और जुड़े रहना भी उचित नहीं।

जो भी कहना हो जो उचित लगे उसे एक दो बार जरूर कह दें या समझा दें करने के लिए पर इससे अधिक नहीं ? बार-बार दुहराने से वही बात लोगों में ऊब पैदा करती है और वह निरर्थक और व्यर्थ समझी जाती है।

अपनी जरूरतों पर पाबन्दी रखना आवश्यक है। कम से कम चीजें होंगी तो कम से कम उनके पीछे समय बर्बाद होगा। पैसे, समय और श्रम का दुरुपयोग भी इससे होता है। आवश्यकताएँ जितनी सीमित होंगी समय का अपव्यय उतना ही कम होगा। अतः जीवन में सुख और शान्ति बनाए रखने के लिए अपनी आवश्यकताओं पर अंकुश लगाना आवश्यक है।

सुख-सुविधाओं के साधन जुटा लेने से सुख नहीं मिलता । वास्तविक सुख तो मन की शान्ति में है, संतोष में है और सत् साहित्य के अध्ययन-मनन और निदिध्यासन में है ।

सद्वृत्तियों को अपनाने के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है और अभ्यास के लिए संयम की जरूरत है अतः मन को संयम और नियम में बाँधने की जरूरत है तभी जीवन सार्थक लगेगा और मन को शान्ति मिलेगी। ✦✦

प्रेरक-प्रसंग :-

समर्पण योग और समर्पण क्षेम

—श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव

घटना सन् 1965 की है जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था। तब युद्ध आरम्भ होने से पहले सैनिकों की आम लामबंदी की घोषणा हुई और अड़तालीस घंटे की अवधि में सैनिकों को सीमा पर निर्धारित स्थल पर पहुँचने का आदेश हुआ। इस अवधि में सैनिक अपने इष्ट-परिवार के सदस्यों से विदाई लेकर सीमा पर चले। सन् 1965 तक रामाश्रम सत्संग के एक आचार्य व सैनिक स्व. श्री राजपालसिंह के प्रयासों से अनेक सैनिक सत्संग से जुड़ गए थे। महू छावनी (मध्य प्रदेश) में श्री राजपाल सिंह जी की पोस्टिंग थी और वहाँ सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र में सेना की विभिन्न टुकड़ियां प्रशिक्षण हेतु आती थीं। महू के एक असैनिक कर्मचारी श्री ..... के निवास पर नियमित साप्ताहिक सत्संग होता था। लामबंदी के आदेश को पाकर सत्संग से जुड़े प्राय: सभी सैनिक घर न जाकर अपने प्राणों का मोह त्यागकर प. पू. गुरु महाराज का स्थान मथुरा तथा/अथवा प. पू. परम भागवत के स्थान टूंडला होते हुए युद्धक्षेत्र में पहुँचे। परम भागवत को उन सैनिकों ने पूरी श्रद्धा-विश्वास से प्रणाम करके उनसे कुछ नहीं मांगा। परम भागवत का मौन आशीर्वाद उन्हें मिला। वे मात्र 5-10 मिनट वहाँ रुककर तुरंत स्टेशन पर गाड़ी पकड़ने लौट पड़ते थे। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् सभी सैनिक अपने परिचित-मित्रों के विषय में सूचना पाने को आतुर रहते थे। संयोगवश महू में अनेक सैनिकों को आना पड़ता था और श्री .... के पास उन सत्संगी सैनिकों की जानकारी आती रहने लगी। कुछ माह पश्चात यह जानकर आश्चर्य हुआ कि सत्संग से जुड़े जो भी सैनिक गुरु स्थान अथवा परम भागवत को प्रणाम् करके युद्ध में गए थे वे सभी सुरक्षित थे। उनके द्वारा न केवल युद्ध का दायित्व सफलतापूर्वक पूरा किया गया अपितु उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले अन्य सैनिक भी विपरीत परिस्थितियों में सुरक्षित रहे ।

रामचरितमानस में राम-रावण युद्ध में स्वयं भगवान राम ने व्यक्त किया है-

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा ।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।

(6/79/5)

श्री राम के ये वचन भारत-पाक युद्ध में भी परीक्षा में खरे उतरे जब सत्संगी सैनिक भाई युद्ध क्षेत्र में जाने से पहले अपना समस्त अस्तित्व गुरु चरणों में अर्पित करके गीता की वाणी "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" हेतु निकल पड़े थे। समर्पण योग और समर्पण क्षेम सार्थक हो उठा था।

✦✦

सबसे अच्छा सौदा

—श्री लखपति सिंह

संतजन कहते हैं कि यह जीवन अनमोल हीरा है, इसे कौड़ी के बदले मत गँवाओ। क्या इस पर विचार किया है कि यह हीरा क्यों है ? और कौड़ी पर गँवाना क्या है ? इस मनुष्य शरीर को पाकर यदि इसे सिर्फ खाने-पीने, सोने-जागने और व्यर्थ के कामों में ही खपा दिया तो यही कौड़ी के मोल बिकना है। जीवन में कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं किया बस बच्चे जैसे कौड़ी से खेलते हैं, इधर-उधर फैंकते हैं, यही हाल जीवन का हुआ तो इसे खेल में ही गँवा दिया।

यह कितनी बड़ी नादानी है, कितनी बड़ी भूल है, कितनी बड़ी हानि है। कहते हैं कि एक बालक खेत की रखवाली कर रहा था। उसने कहीं से बहुत-से पत्थर इकट्ठे कर लिये थे और उन्हें फेंक-फेंक कर पक्षियों को भगा रहा था। कोई जौहरी उधर से गुजरा तो यह तमाशा देखा कि ये तो सब हीरे हैं, साधारण पत्थर नहीं हैं। यह इन्हें पहचानता नहीं है इसलिये इन्हें फेंक रहा है। उसने बच्चे को इसकी कीमत बतायी, कहा ये हीरे हैं, बड़े कीमती हैं। इन्हें सँभाल कर रख। बच्चे को कुछ ज्यादा समझ में नहीं आया। सोचा कोई खास पत्थर होंगे।

यही हाल हमारा है। हमने इसका मूल्य नहीं समझा है। इसीलिये इसे अनाप-शनाप कर्मों में, मौज-मस्ती में व्यतीत कर रहे हैं। हमारा अपना कोई लक्ष्य नहीं है। यदि लक्ष्य है भी तो यही कि खूब धन कमा लो। जैसे भी हो किसी दूसरे का हथिया लो। छल-प्रपंच और हिंसा के द्वारा भी अपना घर भर लो और अन्त में हाय-हाय करके अपना जनाजा निकाल लो। क्या मिला, क्या हाथ आया? इसलिये इकट्ठा इतना ही करो जिसमें घर गृहस्थी ठीक से चले। नेक कमाई करो। परिश्रम का अन्न ग्रहण करो। आत्मा प्रसन्न होगी। सुख और शान्ति नसीब होगी। दस-बीस पीढ़ियों की चिंता करना, उसके लिये हाय-हाय करना, कोई अर्थ नहीं रखता हाँ कुछ-न-कुछ काम आने वाली वस्तु, सद्विचार और सद्ज्ञान, आनेवाली पीढ़ियों के लिये अवश्य छोड़ जाओ ताकि उनका मार्ग प्रशस्त हो सके।

हमारा यह मानव जीवन ही हीरा है। संत जन ही जौहरी हैं जो इस हीरे की कीमत जानते हैं। हमें इसे खेल-खेल में गँवाते देखकर उन्हें दु:ख होता है। वे हमारे कल्याणार्थ हमें चेताते हैं। हमें जगाते हैं कि इसकी कीमत जानो और सत्य के प्रकाश में आओ। वे कहते हैं कि यह संसार एक बाजार है। यहाँ सारी चीजें बिक रही हैं। इस जीवन में अच्छा सौदा करो। आत्म ज्ञान का उजाला पाओ। यही अमृत है। यह और कहीं नहीं मिलेगा। बस इसी शरीर में, इसी संसार में ही यह मिलेगा। मगर हम उनकी बातें सुनकर भी अनसुनी करते जा रहे हैं। एक नादान बालक की तरह हम इसकी कद्र नहीं करते। वे जगाते हैं, हम फिर उसी

अज्ञान की निद्रा में सो जाते हैं। हम नहीं जान पाते कि यह जीवन का हीरा कितना मूल्यवान है। हम इसे जानने के लिये तत्पर ही नहीं होते । अरे ! अब भी उठो और संत-सद्गुरु से इसका भेद जानो।

लोग आत्मज्ञान को हीरा कहते हैं, मगर यह हीरे से भी अनमोल है। इस पर लाखों-करोड़ों हीरे वार दो तब भी इसका मोल नहीं चुकेगा। अष्टावक्र जी राजा जनक के दरबार में आत्मज्ञान देने के लिये गये। जब गुरु और शिष्य आमने-सामने बैठे तो गुरु ने पूछा-राजन्। इस आत्मज्ञान के लिये क्या कीमत चुकाओगे? राजा ने कहा-महाराज ! यह तो मैंने पहले ही घोषित कर रखा है कि इसके बदले आधा राज्य दे दूँगा। गुरु ने कहा बस ! आधा ही ? अरे इस आत्म ज्ञान की कीमत सिर्फ आधा राज्य ही है? राजा समझदार थे, कहा- महाराज मैं सम्पूर्ण राज्य दे दूँगा। गुरु ने कहा-राजन् इस आत्मज्ञान की कीमत सम्पूर्ण राज्य भी नहीं है। यह तो कुछ भी नहीं है। तब राजा ने कहा-महाराज तब और क्या है? हमारे पास तो यह शरीर ही बचा है। गुरु ने कहा-राजन् इस राज्य और हीरे जवाहरातों से भी कीमती एकचीज आपके पास है और वह है- आपका मन! बस! वह मन ही हमें दे दीजिये और राजा ने अपने मन का भी संकल्प करा डाला। अर्थात् अपना आपा गुरु को सौंपकर एकदम खाली होकर गुरु के सामने बैठ गया। गुरु के मन में अपने मन को मिला दिया और गुरु ने पल भर में निहाल कर दिया।

राजा जनक को जब आत्म ज्ञान हो गया तो उठकर गुरु को प्रणाम किया और कहा-गुरुदेव! मैं जो चाहता था, वह प्राप्त कर गया। मेरा रोम-रोम इस अमृत ज्ञान से सिक्त हो रहा है। अब मैं जा रहा हूँ। किसी दूर देश में अपना जीवन यापन कर लूँगा। यह सब राज-पाट आपका है, आप इसे सँभालिये। गुरु ने कहा- राजन् ! आप फिर गलती कर रहे हैं। हम यहाँ राज्य करने नहीं आए हैं । हम इसे लेकर क्या करेंगे? आप राज्य उसी तरह कीजिये, जैसा पहले करते थे। आप इसका अच्छा प्रबंध करें। पहले आप इसे अपना राज्य जानकर राज्य करते थे, अब इसे मेरा जानकर करें, गुरु का जानकर करें, परमात्मा का जानकर करें। हमने तुझसे राज्य नहीं छुड़ाया, इसके प्रति जो तुम्हारी ममता थी, आसक्ति थी, उसे ही छुड़ाया। तुम्हारे अन्दर जो मैं था, मेरापन था उसे ही छुड़ाया।

हम सोचते हैं कि आत्मज्ञान होने से यह संसार छूट जायेगा। यह सारी धन-संपति छूट जायेगी। हम भिखारी बन जायेंगे। टुकड़े माँग कर जीवन निर्वाह करना पड़ेगा। शरीर को बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। मगर यह भारी भूल है। इस संसार में सुखमय जीवन जीते हुए, धन-संपति और घर गृहस्थी का पालन करते हुए भी जीवन में यह अमृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये घर-बार छोड़ने की नहीं, बस विचार बदलने की जरूरत है। बिना सद्गुरु के यह मार्ग मिलता ही नहीं। लोग किताबों को पढ़कर इस मार्ग को खोजते हैं, उसमें अपना सर खपाते हैं, परन्तु इसका पता नहीं मिलता। क्योंकि आदिकाल से, परंपरा से यह सद्गुरुओं का एक सिलसिला बना हुआ है। जीव जब इसे पाने की इच्छा करता है तब सद्गुरु इसका द्वार खोल देते हैं ।

सच्चा इंसान वही है जो संसार को भोगता हुआ भी आत्मा को भूलता नहीं है। जीवन उसी का सार्थक है जिसने आत्म तत्व को प्राप्त कर लिया है। यह आत्मज्ञान पढ़ने लिखने वाला ज्ञान नहीं है। यह तो अनुभवी ज्ञान है। इसलिये इसे

बेपढ़ों ने भी पाया है। यह प्रत्यक्ष अनुभव और व्यवहार का ज्ञान है। जिसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वास्तव में उसी का मानव जीवन सफल है।

इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रथम अपने अन्तःकरण को एकदम खाली करना होता है। तभी सद्गुरु का दिया हुआ ज्ञान उसमें ठहरता है। अपना सबकुछ सद्गुरु के चरणों में समर्पित करना होता है। जब तक मैं पना और अहंकार रहता है, यह ज्ञान अन्तर में उतरता ही नहीं। कहा है कि ''एक म्यान में दो खड़्ग देखा-सुना न कान''- आत्मज्ञान और अहंकार में बड़ा फासला है। इन दोनों का मेल कभी नहीं होता। इस अहंकार का सेहरा तभी सिर से उतरता है जब जीव विनीत भाव से, समर्पण भाव से सद्गुरु के पावन चरणों में शीश झुकाता है।

आत्मा तो निर्लेप है, सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, मगर जीवात्मा माया के पर्दों में आबद्ध होने के कारण अपना स्वरूप भूल रहा है। जैसे बादल के बीच में आ जाने से सूर्य छिप जाता है, वैसे ही आत्मा का प्रकाश ममत्व और अहंकार के बादलों से छिपा हुआ है। सूर्य को ढक लेने के बाद भी बादलों का कोई विकार सूर्य को स्पर्श नहीं करता। सूर्य जैसा था, वैसा ही उस पार चमकता रहता है, ऐसे ही माया जनित विकार आत्मा को स्पर्श नहीं करते। आत्मा सदा सर्वदा एक रस देदीप्यमान रहती है। बस जीव का यह कर्त्तव्य है कि इन मायावी बादलों को छिन्न-भिन्न करके किसी तरह उस पार पहुँच जाय। सद्गुरु के दरबार में यह बड़ी आसानी से संभव हो जाता है। सत्संग में आते ही ये बादल छँटने लगते हैं और अन्तर का आकाश साफ होने लगता है। इसके लिये यहाँ कुछ करना नहीं पड़ता, बस सद्गुरु की आज्ञा में चलना होता है। यह ज्ञान सत्संगति से ही अन्दर में उतरता है। यह सबके लिये सब जगह सुलभ भी है। हमें ऐसी जगहों पर अपनी बैठक बनानी चाहिये जहाँ आत्मज्ञान बरसता रहता है। आत्म कल्याण के लिये यही एकमात्र सरलतम मार्ग है। पूज्य गुरुदेव सब पर दया करें। ✦✦

प द

— श्री शिवदयाल गुप्ता

विनती सुन लो, कृपा निधान ।
लख चौरासी योनी भटका, पाया नाहीं त्राण ।।
स्त्री-बालक, धन-सम्पत्ति, खूब कमाई जाण ।
नहीं मिली कोई संतुष्टि, नहीं हुआ कल्याण ।।
मनवा दिन-दिन दुखी हो रहा, पिघल रहे हैं प्राण।
अब तो समझ गया ये मूरख झूठी है सब शान ।।
रही कामना एक ही बाकी, पाऊँ आत्म कल्याण ।
शरण तिहारी गही कृपा अब, कर दो कृपा-निधान ।
'शिवदयाल' यह करे विनती जल्द मिलो प्रभु आन ।।

ध्यान, चिंतन और समर्पण

—श्री विनोद विहारी लाल सक्सैना

स्वामी रामकृष्ण का कहना है कि अपने को दो में से किसी एक भाव में ढाल लो। या तो बंदर के बच्चे की तरह हो जाओ कि पकड़ इतनी मजबूत हो कि माँ चाहे कहीं भी जाये, कहीं से कहीं तक कूदे, बच्चे की पकड़ नहीं छूटती। या फिर बिल्ली के बच्चे की तरह बन जाओ। बिल्ली, जिसके जबड़े हालाँकि इतने पैने दाँतों से भरे हैं कि उसका शिकार छूट नहीं सकता, मगर अपने बच्चों को इतने प्यार से मुँह में पकड़ कर दूसरे स्थान पर रख आती है कि बच्चे को पता भी नहीं चलता। पहले वाले में जिम्मेदारी बच्चे की है कि अपनी माँ को किसी भी हालत में न छोड़े और दूसरे में जिम्मेदारी माँ की है कि वह जैसे चाहे रखे। यही पहला वाला मार्ग तप का है और दूसरा समर्पण का ।

यह सत्य है और विचित्र है कि हमारे कष्टों का सम्बन्ध हमारे जागने की अवस्था से है। हमारी चेतना की उस अवस्था से है जिसमें वह इन्द्रियों से काम लेती है। जब हम बहुत परेशान होते हैं, संकटों से घिरे होते हैं और अकेले बैठने को मन होता है तो अकसर कह उठते हैं कि हमें अकेला छोड़ दो । इसी प्रकार जब हमें कष्ट, पीड़ा या दु:ख होता है तो वह केवल जाग्रत अवस्था में होता है, सो जाने पर महसूस नहीं होता। बड़े-बड़े कष्टों की पीड़ा में रोगी को वेहोश कर दिया जाता है। कष्ट कम होने पर उसे होश में ले आते हैं । इसीलिये हम सो जाने का उपाय करते हैं। तभी वृत्ति अंतर्मुखी हो जाती है और विचार जो वाह्य जगत से जुड़े थे, रुक जाते हैं। तभी पीड़ा का अनुभव नहीं होता। पीड़ा का रुकना, कष्ट कम होना ही सुख की नजदीकी है। अत: कष्ट का अनुभव ही न हो, उस अवस्था के लिये विचारों को रोक देना ही मात्र एक साधन है। वही समाधि की गहरी अवस्था के नजदीक ले जाने का उपाय है। यानी विचारों की बलि ईश्वर को चढ़ाना ही मंजिल के नजदीक ले कर जायेगा। वही सुख दिलायेगा। यह विचारों की बलि ही ईश्वर समर्पण है।

समर्पण तीन चीजों से परिपक्व होता है, पहले रिजा व तवक्कुल यानी गुरु या परमात्मा की मर्जी में अपनी मर्जी को मिटा देना और कष्टों में उफ न करना बल्कि धन्यवाद देना। यह विचारों, इच्छाओं और शिकायतों की सीधी-सीधी रोक थाम या बलि चढ़ाना है। दूसरा गुरु चिन्तन जिससे विचारों के पूर्ण रूप से परमात्मा में समर्पित व्यक्ति का चिंतन करने से वैसी ही अवस्था प्राप्त होगी। यह यहाँ तक हो कि अपने शरीर के हर भाग में जो भी हलचल हो वह गुरुदेव की महसूस हो, यह भृंगी करने से अधिक महसूस होगी। इस प्रकार तीसरी ध्यान की गहरी अवस्था, अपने अंदर देर तक रख पाने का अभ्यास। ध्यान की गहरी अवस्था समाधि विचारों की समाप्ति की ही अवस्था है। इन्हीं से अपने विचार कम होंगे और समर्पण आयेगा। अब दूसरी जरूरी चीज यानी

हर समय के चिंतन को लेते हैं । इस हर समय के समर्पण को हम कर ही तब पायेंगे जब हर समय ऐसी आत्मा का चिंतन करते रहें जिसने पूर्ण समर्पण कर रखा हो हर समय चिंतन करने के लिये भगवान कृष्ण कहते हैं :- 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च । मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।8-7' अर्थात हर समय मेरा स्मरण करो और युद्ध करो । मन और बुद्धि को मुझको अर्पित करके सब कार्य करो तो निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगे। यहाँ प्रभु ने समर्पण करने का तरीका चिंतन बताया है कि तुम युद्ध यानी दुनिया का कठिन से कठिन कोई भी काम करो परंतु मुझे स्मरण करते हुए करो। इसके लिये पूज्य गुरुदेव ने चार समय साधने को बतलाया है। वे हैं खाने से पहले, सोने से पहले, टहलते समय और खाली समय। ध्यान से देखें तो अपने जीवनोपार्जन के साधनों के अलावा सारा समय उनके सम्मुख बैठे होने की याद में ही लगा देना है जो भगवान कृष्ण का भी आदेश है। इतने अभ्यास से स्वयं जीवनोपार्जन के साधन के समय भी याद धीरे-धीरे रहने लगेगी। परंतु उनके सूक्ष्म रूप के ध्यान को हर समय बनाये रखना वह भी काम धंधे में लगे होने के समय रखना कठिन है।

तीसरी चीज ध्यान की अवस्था को जितना गहरा और जितनी देर तक बनाये रखा जाय तो उससे ही पहली दो चीजें यानी राजी व रिजा और चिन्तन भी पक्की होंगी। साधारणतः यह मानना है कि सत्कर्म, समर्पण, चिन्तन आदि से ही गहरे ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर हुआ जाता है। परन्तु वास्तव में उल्टा है कि विचारों के रुक जाने की गहरी अवस्था यानी समाधि में ही परमात्मा का प्रभाव महसूस होता है। उसी से सत्कर्म और सदाचरण जिनसे समर्पण और गहरा हो सके बन पाता है। यह सुनने में उल्टा लगता है पर है सच । इस तरह सारी क्रियाओं का केन्द्रीकरण होकर ध्यान पर आता है। विचारों की समाप्ति ही ध्यान है और ध्यान की गहरी अवस्था ही समाधि है । मात्र धारणा पर ही मन को रोकने के प्रयत्न को ध्यान कहना भूल होगी। तभी समाधियों में दीन और दुनिया के असली भेद खुलेंगे। हमें जो ध्यान और उसके साथ करने के लिये क्रियायें बताई गई हैं उनकी यही महानता है कि यह कर्म, उपासना और ज्ञान यानी तीनों को साथ लेकर चलती हैं। यानी सदाचरण, राजी व रिजा कर्म है तो ध्यान व चिन्तन उपासना है और प्रभु दया से गहन ज्ञान जो समाधि में मिले वह असली ज्ञान है। वह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान को विश्वास में बदल देने वाला और आत्मा को प्रफुल्लित करने वाला ज्ञान है ।

अब रिजा व तवक्कुल का रूप देखते हैं। रिजा के लिये हम कहते तो हैं कि हमारे सब काम गुरु जी ही कर रहे हैं । जो कुछ भी हो रहा है वह गुरु जी की मर्जी से हो रहा है। पर क्या हम थोड़ी देर को भी सोच कर देखते हैं कि यह तन हम उनको समर्पित कर दें, फिर जो भी कष्ट हो या सुख मिले उसे स्वयं की देन का न महसूस करके उनका ही समझें । न सुख में इतने लिप्त हो जायें कि उन्हें भूल जायें, बल्कि वह सुख उन्हीं को चढ़ा दें और कष्टों में कोई शिकायत जुबान पर न लायें, न किसी उपाय को पाने के लिये उनसे प्रार्थना करने लगें। बल्कि कष्टों में भी धन्यवाद दें कि ये हमारी तरक्की के लिये ही आये हैं। जब कष्ट असह्य हो जायँ तो मात्र इतनी प्रार्थना भर कर दें कि हे प्रभु अब इन कष्टों को सहने की शक्ति देते रहना। हमारे लिये जो सही हो वही तू कर, इतनी कृपा कर। इसी प्रकार मन को भी

समझें कि जो हर्ष या दुःख महसूस हो उन्हीं की देन है। इसी प्रकार धन जिसमें सारी सम्पत्ति यानी रुपया, पैसा, घर, मकान परिवार, स्त्री, पुत्र आदि सब शामिल हैं को वे जैसे चाहें, रखें। सुख देने वाले या कष्ट देने वाले वे ही हैं, वे जैसे चाहें रखें, उनकी मर्जी है। तब हम समझ पायेंगे कि वास्तव में हृदय से समर्पण कैसे होता है। तब जरा-जरा सी परेशानियों में उनकी ओर कष्ट निवारण के लिये आशा की नज़र से देखना अपने आप छूट जायेगा और स्वयं ही वैराग्य जगने लगेगा। तभी वैराग्य का असली अर्थ समझ में आयेगा। तभी हर समय का समर्पण का अभ्यास हो पायेगा।

साधना में आगे बढ़ने के लिये इस हर समय के समर्पण के अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। चाहे हम कुछ भी करें यानी चाहे नया कपड़ा पहनें, घर में धन लायें, कोई प्रसन्नता वाली चीज या समाचार प्राप्त हो, तो पहले उसे परमेश्वर को चढ़ा दें। कुछ भी ज्ञान अर्जित करें, पूजा ही करें तो उससे मिलने वाले फल को परमेश्वर को अर्पित कर दें। कुछ भी खायें पहले उसे परमात्मा को समर्पित कर दें। इस सबसे सारी इच्छाओं का दमन होगा। निःस्वार्थ भाव से यह करना कठिन कार्य है। क्योंकि मन कहेगा कि फिर हम काहे को जी रहे हैं जब सब कुछ परमात्मा को दे दिया और हर दशा में उसकी मर्जी पर ही निर्भर रहना है तो हमारा जीवन किसलिये है? तभी सद्बुद्धि की आवश्यकता होती है। तभी गुरु के द्वारा ढाढस बँधाये जाने की जरूरत होती है। तभी लगेगा कि हम गीता का निर्देश 'कि हम जो कुछ भी करें सब उसी परमात्मा को देते चलें', पालन हो पायेगा। जैसा कि भगवान स्वयं गीता 9-27 में कहते हैं :-

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्त पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।' अर्थात् हे अर्जुन ! तुम जो कुछ भी करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो धन देते हो, जो तप करते हो वो सब मुझे अर्पण करते रहो । ✦✦

अमृत-वचन

- उस सर्वव्यापी भगवान को सबका ख्याल है। पपीहे की प्यास बुझाने को स्वाँती की वर्षा करते हैं और चकोरों की रुचि के अनुसार जंगलों में अग्नि पैदा करते हैं ।
- जब मनुष्य को ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो जाता है तभी वह प्रह्लाद की भाँति पर्वत से कूद सकता है, अग्नि में बैठ सकता है, समुद्र में गिर सकता है क्योंकि उसे ही हर वस्तु में, हर समय, भगवान ही नजर आते हैं ।
- ईश्वर पर विश्वास करो और ऐसा करो जैसा अपनी माता पर करते हो। फिर तो यह विश्वरूपा माँ तुम्हें हर समय और हर वस्तु में दृष्टिगोचर होने लगेगी। देश-परदेश कहीं पर चले जाने पर कोई दुःख न होने पायेगा ।

- परम भागवत परम संत पं. जी महाराज

आश्रित भाव का उद्‌गम क्षेत्र निर्मल मन

—श्री रामफल राम

हम सभी के लिए यह एक विचारणीय प्रश्न है कि समर्पण के पश्चात् प्राप्त होता क्या है? वास्तव में हम सभी के जीवन की शुरूआत ही पूर्ण समर्पित जीवन से ही होती है मगर होती है हमारी पूर्ण अज्ञानता में। नवजात शिशु को देखें –वह अपने हर एक कार्य के सम्पादन हेतु माता या किसी अन्य पर ही पूर्ण आश्रित रहता है। विस्तर गीला होता है, माँ साफ कर स्वच्छ सूखे कपड़े पर लिटा देती है। वह गन्दा हो जाता है , माँ साफ कर देती है। भूख लगते ही रोने लगता है, माँ कितना भी जरूरी काम कर रही होती है सब कुछ छोड़कर दौड़ी आती है और बच्चे को स्तन पान करा सुलाती है। जब बच्चा नहीं सोता थपकियां लगाती है, लोरी सुनाती है ताकि बच्चा आनन्द से सो जाय । और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह बच्चे की व्यथा या पीड़ा को तो बर्दाश्त नहीं कर पाती चाहे उसके निदान हेतु सर्वस्व ही खोना पड़े। यहां तक कि वह अपना अमूल्य जीवन भी खुशी-खुशी उस पर न्योछावर करने को तैयार रहती है, कारण कि वह जानती है कि उस बच्चे का जीवन, बच्चे की हर एक खुशी उसी पर आश्रित है।

मगर सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि जैसे ही नवजात शिशु की अवस्था से बच्चा आगे बढ़ता है, बुद्धि एवं शरीर का विकास होता है अब उसका आश्रित भाव भी उसी अनुपात में कम होने लगता है । बुद्धि का विकास होते ही चलने फिरने की अवस्था में पहुँचते ही राग द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या आदि विकार उसके अन्तःकरण एवं मन को प्रभावित करने लगते हैं। इनके प्रभाव से मन में अहं की जागृति होती है और आगे चलकर अहं पूर्ण रूप से उसके मन पर ''मैं'' के स्वरूप में झलकने लगता है और इसी 'मैं' का परिणाम उसे हर समय चंचल दुःखी एवं अशान्त किये रहता है। अतः अब चाहता है कि उसके दुःख का कोई निदान मिले तथा अशान्त मन को शान्ति मिले।

अतः अब उनके निदान हेतु भटकता है। सोचता है कि शायद मेरी मूर्खता ही कारण है अतः खूब विद्या ग्रहण करता है। कभी सोचता है कि शायद मेरी गरीबी ही कारण है अतः खूब धन कमाता है एवं इकट्ठा करता है। कभी सोचता है कि शायद मेरी शारीरिक निर्बलता ही कारण है अतः अपने शरीर को खूब बलवान बनाने की तरफ लगता है। मगर यह सब करके एवं प्राप्त कर लेने पर भी उसके मन की अशान्ति कम नहीं होती है । तब वह किसी से पूछकर सदग्रन्थ पढ़ता है, दान करता है, मन्दिर जाता है, तीर्थों में भटकता है। इससे उसे थोड़ा सा लाभ तो अवश्य होता है मगर वह शाश्वत सुख एवं शाश्वत शान्ति से वंचित ही रहता है। हां, उपर्युक्त कर्मों को करते हुए सदग्रन्थों

को पढ़ते हुए उसकी नजर पड़ती है-संत मिलन सम सुख कोउ नाहीं । अब यहीं से उसके अब तक के विचारों में एक प्रकाश की किरण आती है और वह उसकी खोज में संलग्न होता है। मगर "साधु संगति" तो तभी प्राप्त हो सकती है- "जब द्रवहिं दीनदयाल राघव साधु संगति पाइये।"

तब यहाँ प्रश्न उठता है कि दीनदयाल द्रवित कैसे हों? यह पूर्ण सच है कि उन्हें कोई भी सांसारिक पदार्थ को भेंट कर चाहे वह कितना ही बहुमूल्य क्यों न हो उन्हें न कोई द्रवित कर सका और न ही रिझा पाया। सभी महापुरुषों ने कहा है कि वह परमात्मा द्रवित होता है जब सिर्फ उन्हीं से मिलने हेतु हमारा अन्तर विकल हो जाय हृदय में हूक उठने लगे, अन्य किसी की भी प्राप्त की चाहना ही न करें, अश्रुपूरित ललचायी नजरों से उनसे ही दर्शन देने की प्रार्थना करता रहे । इसीलिए तो कहा गया है -

"हँस हँस कन्त ना पाइया, जिन पाये तिन रोय" वास्तव में ऐसे ही हृदय की हालात पर, ऐसे ही विकलता भरे हृदय की पुकार पर ही वह निराकार परमात्मा साकार नर स्वरूप धारण कर गुरु या संत के रूप में आता है और अपेक्षा करता है कि माँ शबरी को नवधा भक्ति के उपदेशों को जो भगवान राम ने दिया, क्रमवार अपने में धारण कर जीवन में उतारते हुए

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना।।

अरण्य काण्ड ।।35।।

की स्थिति को प्राप्त कर ले जो नवजात शिशु की अवस्था की थी ।

मगर विडम्वना ही है कि हमारे अन्तर के विकारों रूपी घने कोहरे से हमारी आत्मा रूपी सूर्य पर ग्रहण लग गया है और मन पूर्ण रूप से अहम से प्रभावित हो करने या न करने के कार्यों के प्रति विवेकहीन संसार की यात्रा में भटकता ही रहता है। हम सब इतिहास उठाकर देखें -अजामिल, डाकू रत्नाकर, डाकू अंगुलीमाल आदि के जीवन की दशा और दिशा क्या थी? सर्वोत्तम मानव शरीर को प्राप्त करके भी पशुता का ही जीवन जी रहे थे। मगर सन्त का सानिध्य प्राप्त होते ही उनका आश्रय पूर्णरूप से ग्रहण करते ही या अपने जीवन की बागडोर उनके हाथों में समर्पित करते ही उनकी दशा एवं दिशा ऐसी बदली कि वे सभी महात्मा बन अमरता को प्राप्त हो गये। लेकिन यह होता है पूर्ण समर्पण के पश्चात् ही, उन्हीं का ही होकर रहने के पश्चात् ही।

वास्तव में एक समर्पित शिष्य को गुरु क्या दे देते हैं आइये हम सब पढ़ें परम भागवत परम संत परम पूज्य पं० मिहीलाल जी की वाणी में–

"एक अक्षर देते हैं प्रबोधित करते हैं, जाग्रत करते हैं । प्राण, अपने प्राण जो पुत्र को भी देने में कुण्ठित हैं वह प्राण अपने हाथ से खींचकर शिष्य के हृदय में बिठाल देते हैं । आप मर कर शिष्य को बचा लेते हैं। जिस ब्रह्मानन्द में अवस्थान करने से, जगत कह कर, शिष्य कह कर, दीक्षा कहकर, फिर कुछ नहीं रहता है, आश्चर्य, वह उसी ब्रह्मानन्द से नीचे उतरते हैं शिष्य पर कृपावश होकर स्नेह से आकुल होकर वही आनन्द शिष्यों में वितरण करते हैं उसी में उनका सुख है। अपने सुख को वह नहीं चाहते। शिष्य की जो कुछ

मलिनता है, जितना कुछ सन्ताप है जितना कुछ पाप है उसे लेकर अपनी पवित्रता से पुण्य के उज्जवल प्रकाश से शिष्य को कृतार्थ करते हैं। उसको कहने से काम नहीं चलता, जो शिष्य हैं वह समझ लेंगे।

हम सभी का परम सौभाग्य है कि रामाश्रम सत्संग मथुरा के संस्थापक समर्थ गुरु के सत्संग का सहारा मिल गया है तथा साथ ही साथ यह हम सबको मानव जीवन (न जाने परमात्मा की कैसी कृपा हो गयी है सुलभ करा दिया है) को अति शीघ्र सार्थकता प्रदान कराने हेतु सभी साधनाओं का मन्थन कर रसायन स्वरूप अति सरल उनकी "आन्तरिक सत्संग की साधना" रूपी सुरसरि में अवगाहन कर अपने अन्तर के कल्मष को धोने का शुभावसर भी प्राप्त हो गया है। सच जानिये कि अगर ठीक-ठीक उनके आदेशानुसार जब नियमित रूप से साधना करने लगेंगे तो हमारा यह कलुषित मन प्रथम चंचलता त्याग एकाग्रता से निरोधावस्था में पहुँच कर पूर्ण निर्मल हो जायेगा वास्तव में निर्मल मन ही वह क्षेत्र हैं जहाँ बड़ी सहजता से सरलता मुदिता, छल कपट हीनता, न किसी बहुमूल्य वस्तु की प्राप्ति से हर्षित न होना, न खो जाने का दुःख ही होना और सबसे महत्वपूर्ण आश्रित भाव आदि ईश्वरीय गुणों की फुलवारी सदा ही लहलहाती हुई अपनी सुगन्ध से सभी जीवों को मदहोश कर शाश्वत आनंद जो नवजात शिशु की अवस्था का सा होता है एहसास कराती रहती है जिससे वास्तव में मानव जीवन बड़ी सहजता से सार्थकता को प्राप्त हो जाता है। गुरु कृपा से, गुरु स्नेह से "समर्पण" जीवन में घटित हो जाता है।

✦✦

सूचना

अब भविष्य में हिन्दी में लिखे गए लेख ही साधन में प्रकाशित होंगे । अंग्रेजी में लिखे गए लेख अलग से एक पत्रिका में प्रकाशित किये जायेंगे । अंग्रेजी के लेखों का पहला प्रकाशन मथुरा भण्डारे के अवसर पर किया जायेगा । अंग्रेजी में जो प्रेमीजन गुरु महाराज की साधना से सम्बन्धित लेख लिखना चाहते हैं उनसे निवेदन है कि ऐसे अंग्रेजी भाषा में लिखे गए लेख 31 दिसम्बर 2014 तक साधन कार्यालय में भेजने की कृपा करें । लेख सरल भाषा में हों एवं ज्यादा लम्बे लेख न हों ।

— सम्पादक

निवेदन

साधन का वार्षिक शुल्क अगस्त 2014 से 150 रुपये हो गया है इसे मई 2014 के साधन में सूचित भी कर दिया गया था। साधन के जिन ग्राहकों ने वार्षिक शुल्क के 135 रुपये ही भेजे हैं उन सभी से निवेदन है कि शेष 15 रुपये भेजने की कृपा करें और जिन्होंने अभी तक वार्षिक शुल्क नहीं भेजा है वह 150 रुपये ही भेजें ।

मैनेजर

साधन प्रेस कार्यालय

समाचार इधर-उधर के :-

सब्जियाँ और सुन्दरता

सुन्दर दिखना चाहते हैं तो कुछ सब्जियां आपकी मदद कर सकती हैं ।

पालक : पालक में फॉलिक एसिड और आयरन प्रचुर मात्रा में होता है। यह त्वचा के रूखेपन को दूर कर उसे नर्म, मुलायम और चमकदार बनाता है।

शलजम : शलजम को ब्यूटी फूड के नाम से जाना जाता है। यह त्वचा में नमी बनाए रखने के साथ-साथ, दाग धब्बे दूर करती है। बढ़ती उम्र के प्रभाव को भी कम करती है।

बैंगन : बैंगन में एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं, जो बढ़ती उम्र में त्वचा को जवां बनाए रखते हैं । बैंगन में फाइबर और पानी प्रचुर मात्रा में होता है, जो त्वचा को हाइड्रेट करता है, जिससे त्वचा चमकदार बनी रहती है।

बंदगोभी : बंदगोभी में सिनीग्रिन कार्बीनॉल जैसे तत्व पाए जाते हैं, जो कैंसर की रोकथाम में मदद करते हैं । इसमें एंटीऑक्सीडेंट्स की भी पर्याप्त मात्रा होती है, जो त्वचा की सही देखभाल करने में काफी मदद कर सकती है ।

लाल मिर्च : लाल मिर्च स्वास्थ्य के साथ-साथ सुंदरता के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ त्वचा को जवां बनाए रखने और निखार लाने में मदद करती है । **— साभार-अमर उजाला**

सब्जियां ताजी रखने के लिये टिप्स

भिंडी अधिक समय तक ताजा रखने के लिए उस पर हल्का सा सरसों का तेल लगा दें ।

घर में अगर क्यारी या गमला हो तो उस मिट्टी में अदरक गाड़ दें । इससे अदरक ताजा रहेगा ।

हरी मिर्च को ज्यादा समय तक टिकाऊ बनाए रखने के लिए डंठल तोड़कर जाली वाले डिब्बे में रखकर फ्रिज में रखें ।

कडी पत्ता (मीठा नीम) को तलकर हवाबंद डिब्बे में रखें । जब आवश्यकता हो इस्तेमाल करें । खुशबू बरकरार रहेगी ।

हरे पत्ते वाली सब्जियां फाइल पेपर में लपेट कर फ्रिज में रखने से अधिक समय तक ताजा रहती हैं । कूदरू को पानी में रखें, जिससे वे पकेंगे नहीं ।

सब्जी बासी हो तो उसे काट कर कुछ देर नींबू का रस मिले पानी में पड़ी रहने दें । ताजी हो जायेगी ।

काटते समय बैंगन काले न पड़े इसके लिए उसको नमक व सोड़ा मिले पानी में डालें ।

टमाटर को काफी दिन ताजा रखना है तो उसके डंठल पर थोड़ा मोम रगड़ दें ।

— धीर हिन्दी साप्ताहिक

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का सत्संग कार्यक्रम/भण्डारा

दमोह

दिनांक : 15 (सुबह, शाम) एवं 16 (सुबह, शाम) नवम्बर 2014
सत्संग स्थल : आशीर्वाद गार्डन, पलंदी चौराहा, दमोह (म. प्र.)
सम्पर्क सूत्र : श्री मानक पटेल मो. 09425095689
: श्री आर. सी. सोनी मो. 09826386054

इन्दौर (म.प्र.)

दिनांक : 9 (सायं से), 10 एवं 11 दिसम्बर 2014
सत्संग स्थल : पंजाब अरोड़ वंशीय समाज धर्मशाला
17, महात्मा गाँधी रोड (नाथ मन्दिर रोड)
सम्पर्क सूत्र : फोन : 0731-2528200, मो. 09424008654

कोलकटा

दिनांक : 18 (सुबह से), 19 एवं 20 दिसम्बर 2014
सत्संग स्थल : बिनानी धर्मशाला, पथरिया घाट स्ट्रीट, कोलकटा
सम्पर्क सूत्र : श्री भागवत सिंह मो. 09830160036
: श्री मुरारीलाल लधानियाँ मो. 09331026176

पटना भण्डारा

दिनांक : 21 (सुबह से), 22 एवं 23 दिसम्बर 2014
सत्संग स्थल : गेट पब्लिक लाइब्रेरी, रोड नं. 15 खगौल रोड, गर्दनी बाग
सम्पर्क सूत्र : श्री सुधीर रंजन सहाय
फोन : 0612-2253700 मो. 09431015855

मुगलसराय

दिनांक : 24 (सुबह से), 25 एवं 26 दिसम्बर 2014
सत्संग स्थल : रवि नगर, काली मन्दिर के पास
सम्पर्क सूत्र : श्री देवभानु गुप्ता मो. 09450959888
श्री गुरु प्रकाश सिंह मो. 09450875228

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि अगस्त 2014 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : 82 [अक्टूबर-2014] अंक : 03

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

✲ साधन के नियम ✲

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना ''साधन'' का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की **20-21** तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की **15** तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **150/=** है। एक प्रति का शुल्क रुपये **16/=** है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये **20/=** है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **1400/=** है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **1350/** है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **2500/** है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो ''साधन हिन्दी मन्थली'' के नाम **813**, डैम्पियर नगर, मथुरा-**281001** को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence To Post without Prepayment :Licence No.-AGRA / WPP-01/2012-2014. Regd. No. R.N.2358/
Postal Regd. No. MTR/28/2012-2014. Date of Publication : 8th to 15th of every Mon

साधन

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800